श्री अष्टावक्र गीता

राजा जनक और अष्टावक संवाद

Shrimad Rajchandra Mission, Delhi

a Spiritual Revolutionary Movement - SRM

Shrimad Rajchandra Mission, Delhi

a Spiritual Revolutionary Movement - SRM

श्री अष्टावक्र गीता

राजा जनक और अष्टावक्र संवाद

a Referring Book for Satsangs in 2014 by

BEN Sri Ratna PRABHU

Satsangs also available on

www.youtube.com
/srmissiondelhi

www.soundcloud.com
/shrimadrajchandradelhi

Published by
Shrimad Rajchandra Mission...The Kendra, Delhi
76, Tarun Enclave, Pitampura, Delhi - 110034
www.shrimadrajchandradelhi.org

Published at
Vardhman Sales Corporation
98-U.B., Jawahar Nagar, Delhi - 110007

Derived from
Shri Nandlal Dashora's Works

अनुक्रम

प्रकरण		प्रकरण विवरण	श्लोक सं.
पहला	:	आत्मा के अनुभव का उपदेश	20
दूसरा	:	जनक का अनुभव	25
तीसरा	:	आक्षेप पूर्वक गुरु का उपदेश	14
चौथा	:	जनक का निश्चय	6
पाँचवाँ	:	लय का उपदेश	4
छठा	:	यथार्थ ज्ञानोपदेश	4
सातवाँ	:	जनक का अनुभव	5
आठवाँ	:	बन्ध और मोक्ष का स्वरूप	4
नवाँ	:	वैराग्य निरूपण	8
दसवाँ	:	उपशम	8
ग्यारहवाँ	:	ज्ञानाष्टक	8
बारहवाँ	:	जनक की स्थिति	8
तेरहवाँ	:	जनक की सुखमयी अवस्था	7
चौदहवाँ	:	शान्ति का उपदेश	4
पँद्रहवाँ	:	तत्त्व का उपदेश	20
सोलहवाँ	:	विशेष ज्ञान का उपेदश	11
सत्रहवाँ	:	तत्त्व स्वरूप का वर्णन	20
अठारहवाँ	:	शम का उपदेश	100
उन्नीसवाँ	:	आत्म विश्रान्ति निरूपण	8
बीसवाँ	:	जीवनमुक्ति निरूपण	14

1

पहला प्रकरण

आत्मा के अनुभव का उपदेश

1 कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।
वैराग्यं च कथं प्राप्तमेतद् ब्रूहि मम प्रभो।।

अनुवादः राजा जनक ने ज्ञान–प्राप्ति एवं मुक्ति–हेतु अष्टावक्र के सामने जिज्ञासा की कि हे प्रभो! ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? मुक्ति कैसे होती है?और वैराग्य कैसे प्राप्त होता है?यह मुझे कहिए।

हिंदी छंद

पूछा जनक ने ज्ञान कैसे प्राप्त करता नर कहो।
किस भाँति होगी मुक्ति भी वैराग्य कैसे प्राप्त हो।।
स्वामिन्! मुझे समझाइए हैं साध्य साधन ये सभी।
अधिकारी उत्तम जान अष्टावक्र जी बोले तभी।।

---

2 मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्यज्।
क्षमार्ज्जवदयातोषं सत्यं पीयूषवद् भज।।

अनुवादः अष्टावक्र ने कहा– हे प्रिय! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और क्षमा, आर्जव (सरलता), दया, सन्तोष और सत्य को अमृत के समान सेवन कर।

हिंदी छंद

यदि चाहते हो मुक्ति प्रिय! विष सम विषय सब परिहरो।
शम, दम, तितिक्षा, यम, नियम साधन सुधा सेवन करो।।

3 न पृथ्वी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्न वा भवान्।
एषां साक्षिणमात्मामं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये।।

अनुवादः तू न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है। मुक्ति के लिये अपने को इन सबका साक्षी चैतन्यरूप जान।

हिंदी छंद

पृथ्वी नहीं जल तुम नहीं, नहिं अग्नि वायु व्योम तुम।
साक्षी सबों का जान लो, हो नित्य चेतन मुक्त तुम।।

---

4 यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तः बन्धमुक्तो भविष्यसि।।

अनुवादः यदि तू देह को अपने से अलग कर और चैतन्य में विश्राम कर स्थित है तो अभी ही सुखी, शान्त और बन्ध–मुक्त हो जायेगा।

हिंदी छंद

यदि देह को करके पृथक, तुम आत्मनिष्ठा पाओगे।
सुखमय अभी बस शान्त, बन्धनमुक्त भी हो जाओगे।।

---

5 न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।
असंगोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव।।

अनुवादः तू ब्राह्मण आदि वर्ण नहीं है और न तू किसी आश्रम वाला है; न आँख आदि इन्द्रियों का विषय है। ऐसा जानकर सुखी हो।

हिंदी छंद

वर्णाश्रमी इन्द्रिय विषय नहिं दृश्य भी तुम सन्मुखी।
निस्संग बिन आकार हो, तुम विश्वदृष्टा हो सुखी।।

6 धर्माऽधर्मौ सुखं दुःखं मानसानि न ते विभो।
न कर्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवासि सर्वदा।।

अनुवादः तू विभो! (व्यापक) धर्म और अधर्म, सुख और दुःख मन के हैं। तेरे लिये नहीं हैं। तू न कर्त्ता है, न भोक्ता। तू तो सर्वदा मुक्त ही है।

हिंदी छंद | सुख दुःख धर्म अधर्म ये, हैं मानसिक, तुममें नहीं।
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं, हो मुक्त राजन्! सब कहीं।।

---

7 एको दृष्टाऽसि सर्वस्य मुक्तप्रायोऽसि सर्वदा।
अवमेय हि ते बन्धो दृष्टारं पश्यसीतरम्।।

अनुवादः तू एक सबका दृष्टा है, और सदा सचमुच मुक्त है। तेरा बन्धन तो यही है कि तू अपने को छोड़कर दूसरे को दृष्टा देखता है।

हिंदी छंद | हो एक दृष्टा सर्व के तुम, मुक्त प्रायः नित्य ही।
दृष्टा पृथक् तुम देखते, बन्धन तुम्हारा है यही।।

---

8 अहं कर्त्तेत्यहंमान महाकृष्णाहि दंशितः।
नाहं कर्त्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखी भव।।

अनुवादः मैं कर्त्ता हूँ– ऐसा अहंकाररूपी विशाल काले सर्प से दंशित हुआ तू, 'मैं कर्त्ता नहीं हूँ' ऐसे विश्वासरूपी अमृत को पीकर सुखी हो।

हिंदी छंद | कर्तापने का अहं, काले सर्प से डसकर दुखी।
कर्ता न मैं, विश्वास का पीयूष पी होजा सुखी।।

9 एको विशुद्ध बोधोव्योऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकः सुखी भव।।

अनुवादः 'मैं एक विशुद्ध बोध हूँ' ऐसी निश्चयरूपी अग्नि से गहन अज्ञान को जलाकर तू शोकरहित हुआ सुखी हो।

हिंदी छंद

मैं एक बोध विशुद्ध हूँ, इस निश्चयात्मक आग से।
अज्ञान वन को दे जला, होजा सुखी बस त्याग से।।

---

10 यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखं चर।।

अनुवादः जहाँ यह विश्व रस्सी में सर्प के समान कल्पित भासता है वही आनन्द परमानन्द बोध है। अतः तू सुखपूर्वक विचर।

हिंदी छंद

यह रज्जु कल्पित सर्प सम, जिसमें जगत भासे अहो।
आनन्द परमानन्द तुम, वह बोध हो सुख से रहो।।

---

11 मुक्ताभिमानी मुक्तोहि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्।।

अनुवादः मुक्ति का अभिमानी मुक्त है, और बद्ध का अभिमानी बद्ध है। यहाँ यह किंवदन्ती सत्य है कि जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है।

हिंदी छंद

मुक्ताभिमानी मुक्त है, बद्धाभिमानी बद्ध है।
जैसी मती वैसी गति, लोकोक्ति भी यह सत्य है।।

12 आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः।
असंगो निस्पृहः शान्तो भ्रमात्संसारवानिव।।

अनुवादः आत्मा साक्षी है, व्यापक है, पूर्ण है, एक है, मुक्त है, चैतन्यस्वरूप है, क्रियारहित है, असंग है, निस्पृह (इच्छारहित) है, शान्त है। यह भ्रम से संसारी जैसा (बन्धनग्रस्त) भासता है।

हिंदी छंद

अक्रिय असंगी शान्त निस्पृह, पूर्ण आत्मा दस दिशा।
चिन्मुक्त साक्षी एक भ्रम से भासता संसार सा।।

---

13 कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभावयः।
आभासोऽहं भ्रमं मुक्त्वा भावं बाह्यमथान्तरम्।।

अनुवादः 'मैं आभासरूप (अहंकारी जीव) हूँ' ऐसे भ्रम को एवं बाहर–भीतर के भाव को छोड़कर तू कूटस्थ (अचल स्थिर) बोधरूप एवं अद्वैत, आत्मा का विचार कर।

हिंदी छंद

आभास हूँ मैं बाह्य भीतर, भेदमय भ्रम त्याग कर।
अद्वैत बोध निजात्म को, कूटस्थ नृप! निर्धार कर।।

---

14 देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक।
बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्य सुखी भव।।

अनुवादः हे पुत्र! तू बहुत काल से देहाभिमान के पाश से बँधा हुआ है। उसी पाश को 'मैं बोध हूँ' इस ज्ञान की तलवार से काटकर तू सुखी हो।

हिंदी छंद

मैं देह हूँ इस पाश से प्रिय! तुम बँधे रहते दुखी।
चिद्रूप हूँ ज्ञानास्त्र से, कर छिन्न वह होओ सुखी।।

15 निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरञ्जनः।
अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि।।

अनुवादः तू असंग है, क्रिया–रहित है, स्वयं प्रकाश है, और निरंजन (निर्दोष) है। तेरा बन्धन यही है कि तू (उसकी प्राप्ति के लिये) समाधि का अनुष्ठान करता है।

हिंदी छंद

निस्संग तुम निष्क्रिय तथा निर्दोष स्वयं प्रकाश तुम।
बन्धन तुम्हारा है यही, जो कर रहे अभ्यास तुम।।

---

16 त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः।
शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मा गमः क्षुद्रचित्तताम्।।

अनुवादः यह संसार तुझमें व्याप्त है, तुझ ही में पिरोया है। यथार्थतः तू चैतन्यस्वरूप है। अतः क्षुद्रचित्त को मत प्राप्त हो।

हिंदी छंद

तुमसे जगत् यह व्याप्त है, तुममें पिरोया सच अहो!
तुम शुद्ध बुद्ध स्वरूप हो, मत क्षुद्रता को प्राप्त हो।।

---

17 निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः।
अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भव चिन्मात्रवासनः।।

अनुवादः तू निरपेक्ष (अपेक्षारहित) है, निर्विकार है, स्वनिर्भर है, शान्ति और मुक्ति का स्थान है, अगाध बुद्धिरूप है, क्षोभ–शून्य है। अतः चैतन्यमात्र में निष्ठा वाला हो।

हिंदी छंद

निरपेक्ष तुम अविकारि तुम, निर्भर सुखी शीतल हृदय।
अक्षुब्ध बुद्धि अगाध तुम, चिन्मात्र में स्थिर हो अभय।।

18 साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्चलम्।
एतत् तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसम्भवः।।

अनुवादः साकार को मिथ्या जान, निराकार को निश्चल (स्थिर) जान। इस तत्व के उपदेश से संसार में पुनः उत्पत्ति नहीं होती।

हिंदी छंद | आकार जानो चल अचल, आत्मा बिना आकार है।
इस वास्तविक दृढ़ बोध से, फिर जन्म नहिं संसार है।

---

19 यथैवादर्शमध्यस्थे रूपेऽन्तः परितस्तु सः।
तथैवास्मिन् शरीरेऽन्तः परितः परमेश्वरः।।

अनुवादः जिस तरह दर्पण अपने में प्रतिबिम्बित रूप के भीतर और बाहर स्थित है, उसी तरह परमात्मा इस शरीर के भीतर और बाहर स्थित है।

हिंदी छंद | ज्यों दर्पण स्थित रूप में, सर्वत्र दर्पण भासता।
परमात्म अन्तर बहिर त्यों, इस देह माँहि प्रकाशता।।

---

20 एकं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर यथा घटे।
नित्यं निरन्तरं ब्रह्म सर्वभूतगणो तथा।।

अनुवादः जिस प्रकार सर्वव्यापी एक आकाश घट के भीतर और बाहर स्थित है, उसी तरह नित्य और निरन्तर ब्रह्म सब भूतों में स्थित है।

हिंदी छंद | घट मध्य अन्तर बाह्य व्यापक, एक ही नभ है यथा।
सब प्राणियों में भी निरन्तर, ब्रह्म नित पूरण तथा।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां प्रथमं प्रकरणं समाप्तम्।)

2

दूसरा प्रकरण

जनक का अनुभव

1 अहो निरंजनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः।।

अनुवादः राजा जनक को अष्टावक्र का उपदेश सुनते ही आत्मज्ञान हो गया वे कहते हैं– "मैं निरंजन (निर्दोष) हूँ, शान्त हूँ, बोध हूँ, प्रकृति से परे हूँ, आश्चर्य है। किन्तु मैं इतने काल तक मोह द्वारा ठगा गया हूँ।"

हिंदी छंद

मैं शांत हूँ, निर्दोष हूँ मैं, हूँ प्रकृति से पर अहो।
हूँ बोधमय, बस मोह से अब तक ठगाया मैं अहो।।

---

2 यथा प्रकाशयाम्येको देहमेनं तथा जगत्।
अतो मम जगत्सर्वमथवा न च किंचन।।

अनुवादः जैसे इस देह को मैं अकेला ही प्रकाशित करता हूँ, वैसे ही संसार को भी प्रकाशित करता हूँ। इसीलिए तो मेरा सम्पूर्ण संसार है अथवा कुछ भी नहीं है।

हिंदी छंद

हूँ मैं प्रकाशक देह का ज्यों विश्व का त्यों हो रहा।
हूँ एक, मेरा यह सभी अथवा न कुछ मेरा रहा।।

3 सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य मयाऽधुना।
कुतश्चित्कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते।।

अनुवादः आश्चर्य है कि शरीर सहित विश्व को त्यागकर किसी कुशलता से ही (उपदेश से ही) अब मैं परमात्मा को देखता हूँ।

हिंदी छंद

तीनों शरीरों सहित अब, सब विश्व को करके विलग।
आश्चर्य ज्ञान प्रभाव से, मैं देखता ईश्वर सजग।।

---

4 यथा न तोयतो भिन्नास्तरंगाः फेनबुद्बुदाः।
आत्मनो न तथा भिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम्।।

अनुवादः जैसे जल से तरंग, फेन और बुदबुदा भिन्न नहीं है, वैसे ही विश्व आत्मा से भिन्न नहीं है किन्तु आत्मा से ही निकला हुआ है।

हिंदी छंद

जल से तरंगें फेन या बुद् बुद् नहीं है भिन्न ज्यों।
चैतन्य आत्मा से प्रकट, यह विश्वआत्म अभिन्न त्यों।।

---

5 तन्तुमात्रो भवेदेव पटो यद्वद्विचारतः।
आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वं विचारितम्।।

अनुवादः जैसे विचार करने से वस्त्र तन्तु मात्र ही होता है वैसे ही विचार करने से यह संसार आत्मसत्ता मात्र ही है।

हिंदी छंद

सुविचार से ये वस्त्र सारे, तन्तु ही भासें यथा।
चैतन्य सत्ता मात्र सब, संसार भी भासे तथा।।

6

यथैवक्षुरसे क्लृप्ता तेन व्याप्तैव शर्करा।
तथा विश्वं मयि क्लृप्तं मया व्याप्तं निरन्तरम्।।

अनुवादः जैसे ईख के रस से बनी हुई शर्करा ईख के रस में व्याप्त है, वैसे ही मुझसे बना हुआ संसार मुझमें भी व्याप्त है।

हिंदी छंद

ज्यों इक्षुरस में शर्करा, रहती हुई रस व्याप्त है।
मुझ में सदा कल्पित हुआ, त्यों विश्व मुझसे व्याप्त है।।

7

आत्माऽज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते।
रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते न हि।।

अनुवादः आत्मा के अज्ञान से संसार भासता है, आत्मा के ज्ञान से नहीं भासता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है, उसके ज्ञान से नहीं भासता है।

हिंदी छंद

इस आत्म के अज्ञान से भासे जगत्, नहिं ज्ञान से।
है सर्प रस्सी बोध बिन, नहिं रज्जु की पहचान से।।

8

प्रकाशो मे निजं रूपं नातिरिक्तोऽस्म्यहं ततः।
यदा प्रकाशते विश्वं तदाऽहं भास एव हि।।

अनुवादः प्रकाश मेरा निजी स्वरूप है। मैं उससे भिन्न नहीं हूँ। जब संसार प्रकाशित होता है तब वह मेरे ही से प्रकाशित होता है।

हिंदी छंद

मेरा प्रकाश स्वरूप निज, उससे कदापि भिन्न नहिं।
जब जग प्रकाशित हो, तब मैं ही प्रकाशूँ अन्य नहिं।।

9 अहो विकल्पितं विश्वमज्ञानान्मयि भासते।
रूप्यं शुक्तौ फणी रज्जौ वारि सूर्यकरे यथा।।

अनुवादः आश्चर्य है कि कल्पित संसार अज्ञान से मुझे ऐसा भासता है जैसे सीपी में चाँदी, रस्सी में साँप, सूर्य की किरणों से जल भासता है।

हिंदी छंद

कल्पित जगत मुझमें अहो, अज्ञान से भासे यथा।
रवि किरण में जल, रज्जु में अहि, रजत सीपी में तथा।।

---

10 मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति।
मृदि कुम्भों जले वीचिः कनके कटकं यथा।।

अनुवादः मुझसे उत्पन्न हुआ यह संसार मुझमें ही लय को प्राप्त होगा जैसे मिट्टी में घड़ा, जल में लहर और सोने में आभूषण लय होते हैं।

हिंदी छंद

मुझसे प्रकट यह विश्व, मुझमें लीन भी होगा यथा।
जल में लहर, घट मृत्तिका में, स्वर्ण में भूषण तथा।।

---

11 अहो अहं नमो मह्यं विनाशो यस्य नास्ति मे।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगन्नाशेऽपि तिष्ठतः।।

अनुवादः मैं आश्चर्यमय हूँ। मुझको नमस्कार है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जगत् के नाश होने पर भी मेरा नाश नहीं है। (मैं नित्य हूँ)।

हिंदी छंद

ब्रह्मादि तृण पर्यन्त जग के नष्ट होने पर अहो।
मरता न मैं रहता सदा, मुझको नमन फिर क्यों न हो।।

12 अहो अहं नमो मह्यमेकोऽहं देहवानपि।
क्वचिन्न गन्ता नागन्ता व्याप्त विश्वमवस्थितः।।

अनुवादः मैं आश्चर्यमय हूँ। मुझको नमस्कार है। मैं देहधारी होते हुए भी अद्वैत हूँ। न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और विश्व में व्याप्त स्थित हूँ।

हिंदी छंद
मैं देहधारी एक हूँ पर विश्व भर में व्याप्त तन।
आता न जाता कहीं भी, आश्चर्य है मुझको नमन।।

---

13 अहो अहं नमो मह्यं दक्षो नास्तीह मत्समः।
असंस्पृश्य शरीरेण येन विश्वं चिरं धृतम्।।

अनुवादः मैं आश्चर्यमय हूँ। मुझको नमस्कार है। इस संसार में मेरे समान निपुण कोई नहीं। क्योंकि शरीर को स्पर्श किये बिना ही इस विश्व को सदा–सदा धारण किये रहा हूँ।

हिंदी छंद
मुझ सा चतुर है कौन, जो देहादि क्या छूता न कण।
धारण किया चिरकाल जग, आश्चर्य मैं मुझको नमन।।

---

14 अहो अहं नमो मह्यं यस्य मे नास्ति किंचन।
अथवा यस्य मे सर्वं यद्वाङ्मनगोचरम्।।

अनुवादः मैं आश्चर्यमय हूँ। मुझको नमस्कार है। मेरा कुछ भी नहीं है, अथवा मेरा सब कुछ है– जो मन और वाणी का विषय है।

हिंदी छंद
मेरा न कुछ भी है यहाँ अथवा अहो! ये आयतन।
मन वचन का है जो विषय मेरा सभी मुझको नमन।।

15 ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं नास्ति वास्तवम्।
अज्ञानाद्भाति यत्रेदं सोऽहमस्मि निरजंनः।।

अनुवादः ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ये तीनों यथार्थ नहीं हैं। जहाँ ये तीनों अज्ञान से ही भासते हैं। मैं वही निरंजन (निर्दोष) हूँ।

हिंदी छंद

ज्ञाता न मैं हूँ ज्ञान ही नहिं ज्ञेय त्रिपुटी ये वृथा।
अज्ञान से भासें जहां मैं वह निरंजन सर्वथा।।

---

16 द्वैतमूलमहो दुःखं नान्यत्तस्यास्ति भेषजम्।
दृश्यमेतन्मृषा सर्वमेकोऽहं चिद्रसोऽमलः।।

अनुवादः अहो! दुःख का मूल द्वैत है, उसकी औषधि अन्य कोई नहीं। यह सब दृश्य मिथ्या है। मैं एक शुद्ध चैतन्य रस हूँ।

हिंदी छंद

इस द्वैत मूलक दुःख की, आश्चर्य औषधि नान्य बस।
यह दृश्य सारा झूठ है, मैं शुद्ध चेतन एक रस।।

---

17 बोधमात्रोऽहमज्ञानादुपाधिः कल्पितो मया।
एवं विमृश्यतो नित्यं निर्विकल्पे स्थितिर्मम।।

अनुवादः मैं बोधमात्र हूँ। किन्तु मेरे द्वारा अज्ञान से उपाधि की कल्पना की गई है। इस प्रकार नित्य विचार करते हुए मैं निर्विकल्प में स्थित हूँ।

हिंदी छंद

चिद्रूप हूँ अज्ञानमय, मुझसे उपाधि जड़ हुई।
ऐसा विचारूँ नित्य निष्ठा, निर्विकल्पक मम हुई।।

18 अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम्।
न मे बन्धोऽस्तिमोक्षो वा भ्रान्तिः शान्तानिराश्रया।।

अनुवादः आश्चर्य है। मुझमें स्थित हुआ विश्व वास्तव में मुझमें स्थित नहीं है। इसलिए न मेरा बन्ध है, न मोक्ष। आश्रयरहित होकर मेरी भ्रान्ति शान्त हो गई है।

हिंदी छंद
आश्चर्य मुझमें विश्व है, नहिं वस्तुतः मुझमें सभी।
भ्रान्ति निराश्रय शान्त है, बन्धन न मेरा मोक्ष भी।।

---

19 सशरीरमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चितम्।
शुद्ध चिन्मात्र आत्मा च तत्कस्मिन्कल्पनाऽधुना।।

अनुवादः निश्चय ही शरीरयुक्त यह विश्व कुछ भी नहीं है। यह शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा है तो इसकी कल्पना ही किसमें है।

हिंदी छंद
निश्चय यही सशरीर सारा, विश्व भी कुछ है नहीं।
है शुद्ध चेतन आत्म सत्, अब कल्पना क्या हो कहीं।।

---

20 शरीरं स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ भयं तथा।
कल्पनामात्रमेवैतत्किमे कार्यं चिदात्मनः।।

अनुवादः यह शरीर, स्वर्ग, नरक, बन्ध, मोक्ष व भय कल्पनामात्र ही हैं। उससे मुझे चैतन्यआत्मा का क्या प्रयोजन।

हिंदी छंद
जब देह क्या स्वर्गादि बन्धन, मोक्ष भय भी कल्पना।
फिर मुझ चिदात्म स्वरूप को, कर्तव्य क्या रहता बना।।

21 अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम।
अरण्यमिव संवृत्तं क्व रतिं करवाण्यहम्।।

अनुवादः आश्चर्य है कि जन समूह में भी मुझे द्वैत दिखाई नहीं देता है। यह अरण्यवत् हो गया है तो फिर मैं किससे प्रेम करूँ।

हिंदी छंद | मुझको न जन समुदाय में भी, द्वैत कुछ भासे अहो!
सब शून्य वन सा बन गया, क्या प्रीति किससे हो कहो।।

---

22 नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे बंध आसीद्या जीविते स्पृहा।।

अनुवादः न मैं शरीर हूँ, न मेरा शरीर है, मैं जीव नहीं हूँ, निश्चय ही मैं चैतन्यमात्र हूँ। मेरा यही बन्ध था कि मेरी जीने में इच्छा थी।

हिंदी छंद | नहिं देह मैं मेरी नहीं, नहिं जीव मैं चेतन सही।
बन्धन यही मेरा रहा, जीने की जो इच्छा रही।।

---

23 अहो भुवनकल्लोलैर्विचित्रैर्द्राक् समुत्थितम्।
मय्यनन्तमहाम्भोधौ चित्तवाते समुद्यते।।

अनुवादः आश्चर्य कि अनन्त समुद्ररूप मुझमें चित्तरूपी हवा के उठने पर शीघ्र ही विचित्र जगत्रूपी तरंगे पैदा होती हैं।

हिंदी छंद | अह! मुझ पर अपार समुद्र में, जब चित्त वायु चल पड़े।
तत्क्षण भुवन कल्लोलमय, जग दृश्य हो जाते खड़े।।

24 मय्यनतमहाम्भोधौ चित्तवाते प्रशाम्यति।
अभाग्याज्जीव वणिजो जगत्पोतो विनश्वरः।।

अनुवादः अनन्त महासागररूप मुझ में चित्तरूप वायु के शान्त होने पर जीवरूप व्यापारी के अभाग्य से जगत्‌रूपी नौका नाश को प्राप्त होती है।

हिंदी छंद | हो मुझ अपार समुद्र में, यह चित्त मारुत शान्त जब।
इन जीव वणिकों की जगत नौका विनश्वर शान्त तब।।

---

25 मय्यनन्तमहाम्भोधावश्चर्यं जीववीचयः।
उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः।।

अनुवादः आश्चर्य है कि अनन्त महासागररूप मुझमें जीवरूप तरंगें उठती हैं, परस्पर संघर्ष करती हैं, खेलती हैं तथा स्वभाव से ही लय हो जाती हैं।

हिंदी छंद | अह! मुझ अपार समुद्र में, ये जीव लहरें उठ रहीं।
लड़ती सहज ही खेलती, वे लीन हो जाती यहीं।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम्।)

3

तीसरा प्रकरण

आक्षेप पूर्वक गुरु का उपदेश

1 अविनाशिनमात्मानमेकं विज्ञाय तत्वतः।
तवात्मज्ञस्य धीरस्य कथमर्थार्जने रतिः।।

अनुवादः अष्टावक्र जी राजा जनक की परीक्षा लेने हेतु पूछते हैं कि इन्हें वास्तव में आत्मज्ञान हुआ है या आत्मज्ञान की भ्रान्ति हुई है। ये प्रश्न करते हैं– आत्मा को तत्वतः एक और अविनाशी जानकर भी तुझ आत्मज्ञानी धीर को धन कमाने में आसक्ति क्यों है?

हिंदी छंद

अनुभूति सुनकर जनक की, हो बोध दृढ़ जिस रीति से।
लेने परीक्षा वे लगे, बोले वचन ऋषि नीति से।।
अविनाशि आत्मा एक है, तुम कर चुके यह दृढ़ मती।
फिर आत्मज्ञानी धीर की, क्यों धन कमाने में रती।।

2 आत्माऽज्ञानादहो प्रीतिर्विषये भ्रमगोचरे।
शुक्तरेज्ञानतो लोभो यथा रजतविभ्रमे।।

अनुवादः आश्चर्य कि आत्मा के अज्ञान से विषय का भ्रम होने पर वैसी ही प्रीति होती है जैसी सीपी के अज्ञान से चाँदी की भ्रान्ति में लोभ पैदा होता है।

हिंदी छंद

अज्ञान से ही आत्म के, भ्रामक विषय में राग हो।
ज्यों सीप के अज्ञान से, भ्रम रजत में अनुराग हो।।

3 विश्वं स्फुरित यत्रेदं तरंग इव सागरे।
सोऽहमस्मीति विज्ञान किं दीन इव धावसि।।

अनुवादः जहाँ यह विश्व आत्मा में समुद्र में तरंग के समान स्फुरित होता है, 'वहीं मैं हूँ', ऐसा जानकर क्यों तू दीन की तरह दौड़ता है?

हिंदी छंद

फुरणा जहाँ इस विश्व की, हों सिन्धु में लहरें यथा।
मैं हूँ वही यह जानकर, क्यों दीनवत् भटके वृथा।।

---

4 श्रुत्वाऽपि शुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुन्दरम्।
उपस्थेऽयन्तसंसक्तो मालिन्यमधिगच्छति।।

अनुवादः आत्मा को शुद्ध चैतन्य व अति सुन्दर सुनकर भी कैसे कोई इन्द्रिय के विषय में अत्यन्त आसक्त होकर मलिनता को प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

अत्यन्त सुन्दर शुद्ध चेतन, आत्म को पाकर अहो!
इन्द्रियविषय आसक्त नर, अति मलिनता को प्राप्त हो।।

---

5 सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
मुनेजर्नित आश्चर्यं ममत्वमनुवर्तते।।

अनुवादः सब भूतों में आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को जानकर भी मुनि को ममता होती है। यही आश्चर्य है।

हिंदी छंद

सब प्राणियों में आत्म है, सब भूत आत्मा में अहो।
यह जानने वाला मुनी, आश्चर्य! ममता ग्रस्त हो।।

6 आस्थितः परमाद्वैतं मोक्षार्थेऽपि व्यवस्थितः।
आश्चर्यं कामवशगो विकलः केलिशिक्षया।।

अनुवादः परम अद्वैत में स्थित हुआ और मोक्ष के लिए भी उद्यत हुआ पुरुष काम के वश होकर क्रीड़ा के अभ्यास से व्याकुल होता है– यही आश्चर्य है।

हिंदी छंद

आश्रित परम अद्वैत के, मोक्षार्थ भी उद्यत रहे।
क्रीडा परायण कामवश, आश्चर्य! नर व्याकुल रहे।।

---

7 उद्भूतं ज्ञानदुर्मित्रमवधार्याति दुर्बलः।
आश्चर्यं काममाकाङ्क्षेत्कालमन्तमनुश्रितः।।

अनुवादः काम को उद्भूत ज्ञान का शत्रु जानकर भी कोई अति दुर्बल और अन्तकाल को प्राप्त हुआ पुरुष काम भोग की इच्छा करता है– यही आश्चर्य है।

हिंदी छंद

यह ज्ञान की वैरी प्रकट, निर्बल स्वयं निश्चय करे।
आश्चर्य! अन्तिम काल तक, उस काम की इच्छा करे।।

---

8 इहामुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः।
आश्चर्यं मोक्षकामस्य मोक्षादेव विभीषिका।।

अनुवादः जो इहलोक और परलोक के भोग से विरक्त है और जो नित्य और अनित्य का विवेक रखता है और मोक्ष को चाहने वाला है वह भी मोक्ष से भय करता है– यही आश्चर्य है।

हिंदी छंद

वैराग्य दृष्ट अदृष्ट का, सुविचार नित्य अनित्य का।
अरु मोक्ष की इच्छा रखे, आश्चर्य! भय हो मोक्ष का।

9 धीरस्तु भोज्यमानोऽपि पीड्यमानोऽपि सर्वदा।
आत्मानं केवलं पश्यन्न तुष्यति न कुप्यति।।

अनुवादः धीर पुरुष तो भोगता हुआ भी और पीड़ित होता हुआ भी नित्य केवल आत्मा को देखता हुआ न प्रसन्न होता है, न क्रुद्ध होता है।

हिंदी छंद

ज्ञानी कहीं संस्कृत हुआ, पीड़ित हुआ जन से कहीं।
एकात्म को लखता हुआ, हर्षित कुपित होता नहीं।।

---

10 चेष्टमानं शरीरं स्वं पश्यत्यन्यशरीरवत्।
संस्तवे चापि निन्दायां कथं क्षुभ्येन्महाशयः।।

अनुवादः जो अपने चेष्टारत शरीर को दूसरे के शरीर की भाँति देखता है, वह महाशय पुरुष स्तुति और निन्दा में भी कैसे क्षोभ को प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

चिद्भिन्न चेष्टित देह को, पर देहवत् निज की लखे।
निन्दा प्रशंसा में महोदय, क्षोभ क्या मन में रखे।।

---

11 मायामात्रमिदं विश्वं पश्यन् विगतकौतुकः।
अपि सन्निहिते मृत्यौ कथं त्रस्यति धीरधीः।।

अनुवादः जो इस विश्व को मायामात्र देखता है, और जो आश्चर्य को पार कर गया है, वह धीर पुरुष मृत्यु के आने पर भी क्यों भयभीत होता है।

हिंदी छंद

इस विश्व को मायिक मृषा, कौतुक रहित वह देखता।
यदि मृत्यु भी आए निकट, क्या धीरधी भय लेखता।।

12 निःस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येऽपि महात्मनः।।
तस्यात्मज्ञानतृप्तस्य तुलना केन जायते।।

अनुवादः जिस महात्मा का मन नैराश्य में (मोक्ष में) भी स्पृहा नहीं रखता, उस आत्मज्ञान से तृप्त पुरुष की तुलना किससे की जाये?

हिंदी छंद

मोक्षादि में भी निःस्पृही, मन हो महात्मा का जहाँ।
उस आत्मज्ञानी तृप्त की, कल्पना करें किससे यहाँ।।

---

13 स्वभावादेव जानानो दृश्यमेतन्न किंचन।
इदं ग्राह्यमिदं त्याज्यं स किं पश्यति धीरधीः।।

अनुवादः जो जानता है कि यह दृश्य स्वभाव से ही कुछ नहीं है, वह धीर बुद्धि कैसे देख सकता है कि यह ग्रहण करने योग्य है और यह त्यागने योग्य है?

हिंदी छंद

यह दृश्य सारा कुछ नहीं, ऐसा सहज जो जानता।
वह धीर ज्ञानी गाह्य यह, यह त्याज्य कैसे मानता।।

---

14 अन्तस्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः।
यदृच्छयाऽऽगतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये।।

अनुवादः जिसने अन्तःकरण के कषाय को त्याग दिया है, और जो द्वन्द्वरहित है आशारहित है। ऐसे पुरुष को दैवयोग से प्राप्त भोगों में न दुःख है, न सुख।

हिंदी छंद

निर्द्वन्द्व आशा रहित, अन्तर्वासना निर्मुक्त को।
आए अचानक भोग नहिं, सुख दुःख हेतुक मुक्त को।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां तृतीयं प्रकरणं समाप्तम्।)

4

चौथा प्रकरण

जनक का निश्चय

1 हन्तात्मज्ञस्य धीरस्य खेलतो भोगलीलया।
न हि संसारवाहीकैर्मूढैः सह समानतः।।

अनुवादः राजा जनक अष्टावक्र द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर देते हैं जिससे उनको हुए आत्मज्ञान की पुष्टि होती है। जनक कहते हैं– "हन्त! भोग–विलास के साथ खेलते हुए आत्मज्ञानी धीर पुरुष की बराबरी संसार को सिर पर ढोने वाले मूढ़ पुरुषों के साथ कैसे की जा सकती है?"

हिंदी छंद

सुनकर वचन मुनि के तभी, जो जनक का निश्चय रहा।
होकर अकम्पित धीरधी ने, नम्रता से फिर कहा।।
अह! भोग क्रीड़ा में लगे, आत्मज्ञ इस नर वीर की।
तुलना उचित नहिं भारवाही, मूढ़जन से धीर की।।

---

2 यत्पदं प्रेप्सवो दीना शक्राद्याः सर्वदेवताः।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति।।

अनुवादः जिस पद की इच्छा करते हुए इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता दीन हो रहे हैं, उस पर स्थित हुआ भी योगी हर्ष को प्राप्त नहीं होता– यही आश्चर्य है।

हिंदी छंद

इन्द्रादि सारे देवगण, चाहें जिसे अति दीन हो।
सुस्थित उसी पद में हुआ, ज्ञानी न हर्षित हो अहो।।

3 तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शो ह्यन्तर्न जायते।
न ह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानाऽपि संगतिः।।

अनुवादः उस पद को जाने वाले के अन्तःकरण का स्पर्श वैसे ही पुण्य और पाप के साथ नहीं होता जैसे आकाश का सम्बन्ध भासता हुआ भी धुएँ के साथ नहीं होता।

हिंदी छंद

आकाश धूमिल सा दिखे, पर धूम का संस्पर्श नहिं।
निर्लेप त्यों तत्त्वज्ञ भीतर, पुण्य पाप प्रसक्त नहिं।।

---

4 आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना।
यदृच्छया वर्तमानं तं निषेद्धुं क्षमेत कः।।

अनुवादः जिस महात्मा ने इस सम्पूर्ण जगत् को आत्मा की तरह जान लिया है, उस ज्ञानी को अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करने से कौन रोक सकता है।

हिंदी छंद

सारे जगत् को जो महात्मा, आत्म ही है जानता।
प्रारब्ध भोगाधीन उसका, उस को नियामक मानता।।

---

5 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते भूतग्रामे चतुर्विधे।
विज्ञस्यैव हि सामर्थ्यमिच्छाऽनिच्छाविवर्जने।।

अनुवादः ब्रह्मा से चींटी पर्यन्त चार प्रकार के जीवों के समूह में ज्ञानी की ही इच्छा और अनिच्छा को रोकने में सामर्थ्य है।

हिंदी छंद

ब्रह्मादि तृण पर्यन्त प्राणी, चतुर्विध असमर्थ हैं।
इच्छा अनिच्छा त्याग में, विद्वान् एक समर्थ हैं।।

6 आत्मानमद्वयं कश्चिज्जानाति जगदीश्वरम्।
यद्वेत्ति तस्य कुरुते न भयं तस्य कुत्रचित्।।

अनुवादः कोई विरला ही आत्मा को अद्वय और जगदीश्वर रूप में जानता है। वह जिसे करने योग्य मानता है उसे करता है।

हिंदी छंद

जगदीश आत्मा ब्रह्म को, है एक विरला जानता।
जो जानता करता वही, वह भय कहीं नहिं मानता।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम्।)

5

पाँचवाँ प्रकरण

लय का उपदेश

1 न ते सङ्गोऽस्ति केनापि किं शुद्धस्त्यक्तुमिच्छसि।
संघातविलयं कुर्वन्नेवमेव लयं व्रज।।

अनुवादः अष्टावक्र राजा जनक को मोक्ष का उपाय बताते हुए कहते हैं– "तेरा किसी से भी संग नहीं है इसलिए तू शुद्ध है, फिर किसको त्यागना चाहता है। इस प्रकार देहाभिमान के त्याग की इच्छा करके लय (मोक्ष) को प्राप्त हो।"

हिंदी छंद

सुनकर सही निश्चय, पुनः उपदेश मुनि देने लगे।
लय रूप जो परमार्थ से है, सिद्ध वह कहने लगे।।
निस्संग हो नित शुद्ध तुम, क्या त्याग अब करना चहो।
देहादि लय करते हुए, बस मोक्ष को ही प्राप्त हो।।

2 उदेति भवतो विश्वं वारिधेरिव बुद्बुदः।
इति ज्ञात्वैकमात्मानमेवमेव लयं व्रज।।

अनुवादः तुझसे संसार उत्पन्न होता है जैसे समुद्र से बुलबुला। इस प्रकार आत्मा को एक जानकर मोक्ष को प्राप्त हो।

हिंदी छंद

तुमसे जगत् होता उदित, ज्यों सिन्धु में बुद्बुद् अहो!
यह जान आत्मा एक को, बस मोक्ष को ही प्राप्त हो।।

3 प्रत्यक्षमप्यवस्तुत्वाद्विश्वं नास्त्यमले त्वयि।
रज्जुसर्प इव व्यक्तमेवेमेव लयं व्रज।।

अनुवादः दृश्यमान जगत् प्रत्यक्ष होता हुआ भी रज्जु सर्प की भाँति तुझ शुद्ध के लिये नहीं है। इसलिए तू मोक्ष को प्राप्त हो।

हिंदी छंद

प्रत्यक्ष है पर जग मृषा, हो शुद्ध तुम तुममें नहीं।
यह दृश्य रज्जू सर्पवत्, नृप! मुक्त हो जाओ यहीं।।

---

4 समदुःखसुखः पूर्ण आशानैराश्ययोः समः।
समजीवितमृत्युः सन्नेवमेव लयं व्रज।।

अनुवादः दुःख और सुख जिसके लिए समान है, जो पूर्ण है, जो आशा और निराशा में समान है, जीवन और मृत्यु में समान है। ऐसा होकर तू मोक्ष को प्राप्त हो।

हिंदी छंद

हो पूर्ण तुम, सुख दुःख सम आशा निराशा में तथा।
जीवन मरण में सम हुए, तुम मुक्त होओ सर्वथा।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां पंचमं प्रकरणं समाप्तम्।)

6

छठा प्रकरण

यथार्थ ज्ञानोपदेश

1 आकाशवदनन्तोऽहं घटवत् प्राकृतं जगत्।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः।।

अनुवादः मैं आकाश की भाँति अनन्त हूँ। यह संसार घड़े की भाँति प्रकृतिजन्य है, ऐसा ज्ञान है। इसलिए न इसका त्याग है, न ग्रहण और न लय है।

हिंदी छंद

आकाशवत् मैं नित्य हूँ, घटवत् जगत् यह प्राकृतिक।
इसका ग्रहण नहिं त्याग लय भी ज्ञान है यह सार्वदिक।।

2 महोदधिरिवाहं स प्रपञ्चो वीचिसन्निभः।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः।।

अनुवादः मैं समुद्र के समान हूँ, यह संसार तरंगों के समान है, ऐसा ज्ञान है। इसलिए न इसका त्याग है, न ग्रहण और न इसका लय है।

हिंदी छंद

मैं नित महोदधि तुल्य हूँ, यह जग तरंग समान है।
इसका ग्रहण नहिं त्याग लय भी, वास्तविक यह ज्ञान है।।

3 अहं सु शुक्तिसङ्काशो रूप्यवद् विश्वकल्पना।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः।।

अनुवादः मैं सीपी के समान हूँ, विश्व की कल्पना चाँदी के समान है। ऐसा ज्ञान है। अतएव इसका न त्याग है, न ग्रहण है, न लय है।

हिंदी छंद

मैं शुक्तिवत् कल्पित जगत्, मुझ में रजत सा भान है।
इसका ग्रहण नहिं त्याग लय भी, वास्तविक यह ज्ञान है।।

---

4 अहं वा सर्वभूतेषु सर्वभूतान्यथो मयि।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः।।

अनुवादः मैं निश्चित ही सब भूतों में हूँ और ये सब भूत मुझमें हैं। ऐसा ज्ञान है। इसलिए न इसका ग्रहण है, न त्याग है, न लय है।

हिंदी छंद

मैं सर्वभूतों में, सभी हैं भूत मुझमें, मान यह।
इसका ग्रहण नहिं त्याग लय भी, वास्तविक है ज्ञान यह।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां षष्ठं प्रकरणं समाप्तम्।)

7

सातवाँ प्रकरण

जनक का अनुभव

1 मय्यनन्तमहाम्भौधौ विश्वपोत इतस्ततः।
भ्रमति स्वान्तवातेन न ममास्त्यसहिष्णुता।।

अनुवादः मुझ अन्तहीन महासमुद्र में विश्वरूपी नाव अपनी ही प्रकृत वायु से इधर–उधर डोलती है। मुझे असहिष्णुता नहीं है।

हिंदी छंद

अह! मुझ अनन्त समुद्र में, यह विश्वपोत जहाँ तहाँ।
भ्रमता रहे मन पवन से, क्या क्षोभ है मुझको यहाँ।।

2 मय्यनन्तमहाम्भौधौ जगद् वीचिः स्वभावतः।
उदेतु वास्तमायातु न मे वृद्धिर्न च क्षतिः।।

अनुवादः मुझ अन्तहीन महासमुद्र में जगत्‌रूपी लहर स्वभाव से उदय हो, चाहे मिटे। मेरी न वृद्धि है, न हानि।

हिंदी छंद

हो मुझ अपार समुद्र में, यह विश्व वीचि भले उदय।
या लीन होय स्वभाव से, वृद्धि न मेरी होय क्षय।।

3 मय्यनतमहाम्भौधौ विश्वं नाम विकल्पना।
अतिशान्तो निराकार एतदेवाहमास्थितः।।

अनुवाद: मुझ अनतहीन महासमुद्र में निश्चय ही संसार कल्पनामात्र है। मैं अत्यन्त शान्त हूँ, निराकार हूँ और इसी अवस्था में स्थित हूँ।

हिंदी छंद | अह! मुझ अपार समुद्र में, है कल्पनामय विश्व यह।
अति शान्त में आकार बिन, निष्ठा यही मम ज्ञान यह।।

---

4 नात्मा भावेषु नो भावस्तत्रानन्ते निरजंने।
इत्यसक्तोऽस्पृहः शान्त एतदेवाहमास्थितः।।

अनुवाद: आत्मा विषयों में नहीं है और विषय उस अनन्त निरंजन (निर्दोष) आत्मा में नहीं है। इस प्रकार मैं अनासक्त हूँ, स्पृहामुक्त हूँ, और इसी अवस्था में स्थित हूँ।

हिंदी छंद | आत्मा नहीं देहादि में, शुद्धात्म में नहिं देह यह।
निस्संग निस्पृह शान्त मैं, निष्ठा यही मम ज्ञान यह।।

---

5 अहो चिन्मात्रमेवाहमिन्द्रजालोपमं जगत्।
अतो मम कथं कुत्र हेयोपादेय कल्पना।।

अनुवाद: अहो! मैं चैतन्यमात्र हूँ। संसार इन्द्रजाल की भाँति है। तब मेरी हेय और उपादेय की कल्पना किसमें हो।

हिंदी छंद | हूँ मैं अहो! चिन्मात्र ही, जग इन्द्रजालिक है बना।
मुझको अतः क्या ग्राह्य की क्या त्याज्य की हो कल्पना।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां सप्तमं प्रकरणं समाप्तम्।)

8

आठवाँ प्रकरण

बन्ध और मोक्ष का स्वरूप

1 तदा बन्धो यदा चित्तं किञ्चिद्वाञ्छति शोचति।
किञ्चिन्मुञ्चति गृह्णाति किञ्चिद्हृष्यति कुप्यति।।

अनुवादः इस प्रकरण में अष्टावक्र मुक्ति और बन्ध की व्याख्या करते हुए कहते हैं– "जब चित्त कुछ चाहता है, कुछ सोचता है, कुछ त्याग करता है, कुछ ग्रहण करता है, जब दुःखी और सुखी होता है– तब बन्ध है।"

हिंदी छंद

मन चाहता कुछ सोचता, कुछ त्यागता है जब कभी।
करता ग्रहण है, रुष्ट या सन्तुष्ट बस बन्धन तभी।।

2 तदा मुक्तिर्यदा चित्तं न वाञ्छति न शोचति।
न मुञ्चति न गृह्णाति न हृष्यति न कुप्यति।।

अनुवादः जब मन न चाह करता है, न सोचता है, न त्यागता है, न ग्रहण करता है। जब यह न सुखी होता है, न दुःखी होता है। तभी मुक्ति है।

हिंदी छंद

चित चाहता नहिं सोचता नहिं, त्यागता है कुछ कभी।
करता ग्रहण नहिं कुपित हर्षित मुक्ति हो जाती तभी।।

3 तदा बन्धो यदा चित्तं सक्तं कान्यपि दृष्टिषु।
तदा मोक्षो यदा चित्तमासक्तं सर्वदृष्टिषु।।

अनुवादः जब चित्त किसी दृष्टि अथवा विषय में लगा है तब बन्ध है और चित्त जब सब दृष्टियों से अनासक्त है तब मोक्ष है।

हिंदी छंद
चित जिस किसी भी विषय में, आसक्त हो बन्धन जभी।
हो सर्व विषयों से विरत, मन मुक्त हो जाता तभी।।

---

4 यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बन्धनं तदा।
मत्वेति हेलया किञ्चिन्मा गृहाण विमुञ्च मा।।

अनुवादः जब तक 'मैं' है, तब तक बन्ध है, जब 'मैं' नहीं है तब मोक्ष है। इस प्रकार का विचारकर, न इच्छा कर, न ग्रहण कर, न त्यागकर।

हिंदी छंद
है जब अहं बन्ध तभी, नहिं अहं है तब मोक्ष नर।
यह जानकर मत स्वेच्छया नहिं ग्रहण कुछ नहिं त्याग कर।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां अष्टमं प्रकरणं समाप्तम्।)

9
नवाँ प्रकरण
वैराग्य निरूपण

1 कृताकृते च द्वन्द्वानि कदा शान्तानि कस्य वा।
एवं ज्ञात्वेह निर्वेदाद्भव त्यागपरोऽव्रती।।

अनुवाद: अष्टावक्र जी आगे कहते हैं– "किया और अनकिया कर्म और द्वन्द्वकिसके कब शान्त हुए हैं? इस प्रकार निश्चिन्त जानकर इस प्रकार निश्चिन्त जानकर इस संसार से निर्वेद (उदासीन) होकर त्याग और अव्रती हो।"

हिंदी छंद

यह किया यह नहिं, द्वन्द्व कब किसके हुए शान्त चिन्त।
यह जानकर वैराग्य से, त्यागी रहो आग्रह रहित।।

2 कस्यापि तात धन्यस्य लोकचेष्टावलोकनात्।
जीवितेच्छा बुभुक्षा च बुभुत्सोपशमंगता।।

अनुवाद: हे तात! लोक की चेष्टा (व्यवहार, उत्पत्ति और विनाश) को देखकर किसी भाग्यशाली की ही जीने की कामना, भोगने की वासना और ज्ञान की इच्छा शान्त हुई है।

हिंदी छंद

हैं लोक चेष्टा देखते, विरले सुकृति जन की अहो!
यह जीवनेच्छा भोगइच्छा ज्ञानइच्छा शान्त हो।।

3 अनित्यं सर्वमेवेदं तापत्रितयदूषितम्।
असारं निन्दितं हेयमिति निश्चित्य शाम्यति।।

अनुवादः यह सब अनित्य है, तीनों तापों से दूषित है, सारहीन है, निन्दित है, हेय है। ऐसा निश्चित होने पर शान्ति प्राप्त होती है।

हिंदी छंद

निस्सार निन्दित अनित्य, यह त्रय ताप से दूषित सभी।
है हेय कर निश्चय यही, नर शान्त हो जाता तभी।।

---

4 कोऽसौ कालो वयः किं वा यत्र द्वन्द्वानि नो नृणाम्।
तान्युपेक्ष्य यथा प्राप्तवर्ती सिद्धिमवाप्नुयात्।।

अनुवादः वह कौन सा काल है व कौन सी अवस्था है जिसमें मनुष्य को द्वन्द्व (सुख दुःखादि) न हों?उनकी उपेक्षा कर यथाप्राप्य वस्तुओं में सन्तोष करने वाला मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

है क्या अवस्था काल, जिसमें द्वन्द्वजन को हो नहीं।
तजकर उन्हें निर्वाह करता, सिद्धि पा जाता यहीं।।

---

5 नाना मतं महर्षीणां साधूनां योगिनां तथा।
दृष्टवा निर्वेदमापन्नः को न शाम्यति मानवः।।

अनुवादः महर्षियों के, योगियों के एवं साधुओं के अनेक मत हैं। ऐसा देखकर उपेक्षा को प्राप्त हुआ कौन मनुष्य शांति को नहीं प्राप्त होता।

हिंदी छंद

योगी महर्षि साधकों के, देख नाना मत अहो!
है को विवेकी नर विरागी, जो नहीं उपशान्त हो।।

6 कृत्वा मूर्तिपरिज्ञानं चैतन्यस्य न किं गुरुः।
निर्वेदसमतायुक्त्वा यस्तारयति संसृतेः।।

अनुवादः जो उपेक्षा, समता और युक्ति द्वारा चैतन्य के सच्चे स्वरूप को जानकर संसार में अपने को तारता है, क्या वह गुरु नहीं है?

हिंदी छंद

वैराग्य समता युक्ति से, चैतन्य विग्रह जानकर।
संसार से जो तारता, गुरु रूप वह पहचानकर।।

---

7 पश्य भूतविकारांस्त्वं भूतमात्रान् यथार्थतः।
तत्क्षणाद् बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्थो भविष्यसि।।

अनुवादः जब भूत–विकारों को (देह, इन्द्रिय आदि) तू यथार्थतः भूतमात्र देखेगा– उसी क्षण बन्ध से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जायेगा।

हिंदी छंद

देहादि भौतिक कार्य सब, तुम भूतमय लखते जभी।
ततकाल बन्धन मुक्त हो, निज रूप में स्थित हो तभी।।

---

8 वासना एव संसार इति सर्वा विमुञ्च ताः।
तत् त्यागो वासनात्यागात् स्थितिरद्य यथा तथा।।

अनुवादः वासना ही संसार है इसलिए इन सब (वासनाओं का) का त्यागकर। वासना के त्याग से ही संसार का त्याग है। अब जहाँ चाहे वहाँ रह।

हिंदी छंद

है वासनामय विश्व, उसके त्याग से संसार का।
हो त्याग, छोड़ो वासना, क्या सोच है व्यवहार का।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां नवमं प्रकरणं समाप्तम्।)

10
दसवाँ प्रकरण
उपशम

1 विहाय वैरिणं काममर्थं चानर्थसङ्कुलम्।
धर्मपप्येतयोर्हेतुं सर्वत्रानादरं कुरु।।

अनुवादः अष्टावक्र जी आगे कहते हैं– "वैर स्वरूप काम को और अनर्थ से भरे अर्थ को त्यागकर और दोनों के कारण–रूप धर्म को भी छोड़कर तू सबकी उपेक्षा कर।"

हिंदी छंद

तज काम वैरी अर्थ भी, जो है अनर्थों से भरा।
इन दोय की जड़ धर्म भी, दे त्याग इनमें क्या धरा।।

---

2 स्वप्नेन्द्रजालवत् पश्य दिनानि त्रीणि पञ्च वा।
मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादि सम्पदः।।

अनुवादः मित्र, खेत, धन, मकान, स्त्री, भाई आदि सम्पदा को तू स्वप्न और इन्द्रजाल के समान देख जो तीन या पाँच दिन ही टिकते हैं।

हिंदी छंद

दिन तीन देखो पाँच या, है ऐन्द्रजालिक विश्व भ्रम।
प्रिय मित्र क्षेत्र कलत्र बान्धव गेह धन जन स्वप्न सम।।

3 यत्र यत्र भवेत्तृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।
प्रौढ़वैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भवः।।

अनुवादः जहाँ–जहाँ तृष्णा हो, वहाँ–वहाँ ही संसार जान। प्रौढ़ वैराग्य को आश्रय करके वीत–तृष्णा होकर सुखी हो।

हिंदी छंद

तृष्णा जहाँ है बस वहीं, संसार जानो नर दुःखी।
वैराग्य का ले आसरा, तृष्णा रहित होजा सुखी।।

---

4 तृष्णामात्रात्मको बन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते।
भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्तितुष्टिर्मुहुर्मुहुः।।

अनुवादः तृष्णामात्र ही आत्मा का बन्ध है और उसका नाश मोक्ष कहा जाता है। संसारमात्र से अनासक्त होने से निरन्तर प्राप्ति और तुष्टि होती है।

हिंदी छंद

है बन्ध तृष्णा मात्र बस, अरु मोक्ष उसका नाश ही।
निस्संगता से जगत में हो तुष्टि प्राप्ति सदैव ही।।

---

5 त्वमेकश्चेतनः शुद्धो जड़ विश्वमसत्तथा।
अविद्याऽपि न किञ्चित्सा का बुभुत्सा तथापि ते।।

अनुवादः तू एक शब्द चैतन्य है, संसार जड़ और असत् है। यह अविद्या भी असत् है। इस पर भी तू क्या जानने की इच्छा रखता है।

हिंदी छंद

तुम शुद्ध चेतन एक हो, मायिक जगत् जड़ है असत्।
क्या जानना तुम चाहते, है जब अविद्या भी असत्।।

6 राज्यं सुताः कलत्राणि शरीराणि सुखानि च।
संसक्तस्यापि नष्टानि तव जन्मनि जन्मनि।।

अनुवादः तेरे राज्य, पुत्र, पुत्रियाँ, शरीर और सुख जन्म–जन्म से नष्ट हुए हैं, यद्यपि तू उनमें आसक्त था।

हिंदी छंद

प्रति जन्म में प्रिय नारियाँ सुत राज्य सुख अरु देह भी।
आसक्त रहते पुरुष के भी नष्ट हो जाते सभी।।

---

7 अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा।
एभ्यः संसारकान्तारे न विश्रान्तमभून्मनः।।

अनुवादः अर्थ, काम और सुकृत कर्म बहुत हो चुके। इनमें भी संसाररूपी जंगल में मन विश्रान्ति को प्राप्त नहीं हुआ।

हिंदी छंद

क्या अर्थ से क्या काम से, शुभ कर्म से भी क्या हुआ।
संसार वन में ही भ्रमा, मन शान्त इससे ना हुआ।।

---

8 कृतं न कति जन्मानि कायेन मनसा गिरा।
दुःखमायासदं कर्म तदद्याप्युपरम्यताम्।।

अनुवादः कितने जन्मों तक तूने क्या शरीर, मन और वाणी के दुःखपूर्ण और श्रमपूर्ण कर्म नहीं किये हैं? अब तो आराम कर (अब विश्रान्ति कर)।

हिंदी छंद

मन से वचन से काम से, आयास दुःखदायी अहो!
बहुजन्म कितने कर्म कीन्हें, अब न क्यों उपराम हो।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां दशमं प्रकरणं समाप्तम्।)

11
ग्यारहवाँ प्रकरण

ज्ञानाष्टक

1 भावाभावविकारश्च स्वभावादिति निश्चयी।
निर्विकारो गतकलेशः सुखेनैवोपशाम्यति।।

अनुवादः भाव और अभाव का विकार स्वभाव से होता है ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह निर्विकार और क्लेशरहित पुरुष सुखपूर्वक ही शान्ति को उपलब्ध होता है।

हिंदी छंद

ये भाव और अभाव, स्वाभाविक यही निश्चय रहे।
है निर्विकारी क्लेश बिन, सुख से पुरुष शान्ति लहे।।

2 ईश्वरः सर्वनिर्माता नेहान्य इति निश्चयी।
अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः क्वापि न सज्जते।।

अनुवादः सबको बनाने वाले ईश्वर है अन्य कोई नहीं है, ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह पुरुष शान्त है। उसकी सब आशाएँ जड़ से नष्ट हो गईं हैं। वह कहीं भी आसक्त नहीं होता।

हिंदी छंद

कर्ता सभी का ईश है, नहिं अन्य यह निश्चय सही।
अन्तर्गलित आशा सभी है शान्त नहिं आसक्त ही।।

3 आपदः सम्पदः काले दैवादेवेति निश्चयी।
तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं न वाञ्छति न शोचति।।

अनुवादः विपत्ति और सम्पत्ति दैवयोग से ही समय पर आती हैं, ऐसा निश्चय वाला पुरुष सदा सन्तुष्ट स्वस्थेन्द्रिय हुआ, न कोई कामना करता है, न शोक करता है।

हिंदी छंद

आपद् विपद् सब दैव से हो, समय पर निश्चय सही।
है स्वस्थ इन्द्रिय तृप्त नर, चाहे न सोचे नित्य ही।।

---

4 सुखदुःखे जन्ममृत्यु दैवादेवति निश्चयी।
साध्यादर्शी निरायासः कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

अनुवादः सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु दैवयोग से ही होता है, ऐसा निश्चय वाला व्यक्ति साध्य कर्मों को देखता हुआ और निरायास (प्रसासरहित) कर्मों को करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता।

हिंदी छंद

सुख दुःख जन्म मरण तथा हो दैव से निश्चय हुआ।
श्रमहीन नहिं कुछ साध्य है, नहिं लिप्त है करता हुआ।।

---

5 चिन्तया जायते दुःखं नान्यथेहेति निश्चयी।
तया हीनः सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः।।

अनुवादः (इस संसार में) चिन्ता से दुःख उत्पन्न होता है अन्यथा नहीं। ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह सुखी और शान्त है। सर्वत्र उसकी स्पृहा (इच्छा) गलित है और वह चिन्ता से मुक्त है।

हिंदी छंद

हो दुःख चिन्ता से यहाँ, नहिं अन्य से निश्चय यही।
चिन्ता रहित रहता सुखी, है शान्त कुछ इच्छा नहीं।।

6 नाहं देहो न मे देहो बोधोऽहमिति निश्चयी।
कैवल्यमिव संप्राप्तो न स्मरत्यकृतं कृतम्।।

अनुवादः मैं शरीर नहीं हूँ, देह मेरी नहीं है, मैं तो बोधस्वरूप (चैतन्य) हूँ, ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह पुरुष कैवल्य को प्राप्त होकर किये और अनकिये कर्म का स्मरण नहीं करता।

हिंदी छंद

नहिं देह मैं मेरी नहीं हूँ बोधमय निश्चय यही।
कैवल्य को ही प्राप्त है, वह कृत अकृत सुमरे नहीं।।

---

7 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमहमेवेति निश्चयी।
निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः।।

अनुवादः ब्रह्म से लेकर तृणपर्यन्त 'मैं ही हूँ' ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह निर्विकार, शुद्ध, शान्त और प्राप्त–अप्राप्त से निवृत्त (मुक्त) होता है।

हिंदी छंद

ब्रह्मादि तृण पर्यन्त मैं ही हूँ यही निश्चय अटल।
शुचि शान्त निःसंकल्प लाभालाभ से नहिं हो विकल।।

---

8 नानाश्चर्यमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चयी।
निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिव शाम्यति।।

अनुवादः अनेक आश्चर्यों वाला यह विश्व कुछ भी नहीं है अर्थात् मिथ्या है ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह वासनारहित, बोध–स्वरूप पुरुष इस प्रकार शान्ति को प्राप्त है मानो कुछ भी नहीं है।

हिंदी छंद

आश्चर्य का भण्डार मिथ्या विश्व यह निश्चय सही।
निर्वासनिक चिन्मात्र माया रहित होता शान्त ही।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां एकादशं प्रकरणं समाप्तम्।)

12

बारहवाँ प्रकरण

जनक की स्थिति

1 कायकृत्यासहः पूर्वं ततो वाग्विस्तरासहः।
अथ चिन्तासहस्तस्मादेवमेवाहमास्थितः।।

अनुवाद: राजा जनक आत्मज्ञान के बाद हुई अनुभूतियों का वर्णन अष्टावक्र जी के सामने करते हुए कहते हैं– "पहले मैं शारीरिक कर्मों का न सहारने वाला हुआ, फिर वाणी के विस्तृत कर्म का न सहारने वाला हुआ। इस प्रकार मैं स्थिर हूँ।"

<u>हिंदी छंद</u>

सुनकर समझकर ज्ञान वह, निष्ठा निजि दिखला रहे।
राजा जनक ऋषिवर्य को, नहिं ज्ञान कुछ सिखला रहे।।
कायिक प्रथम, वाचिक अनन्तर मानसिक व्यापार का।
असहिष्णु हो, बस यों रहूं संस्पर्श नहिं संसार का।।

2 प्रीत्यभावेन शब्दादेरदृश्यत्वेन चात्मनः।
विक्षेपैकाग्रहृदय एवमेवाहमास्थितः।।

अनुवाद: शब्द आदि ऐन्द्रिक विषयों के प्रति राग के अभाव से और आत्मा की अदृश्यता से प्राप्त विक्षेपों से जिसका मन मुक्त होकर एकाग्र हो गया– ऐसा ही मैं स्थित हूँ।

<u>हिंदी छंद</u>

शब्दादि विषयों में न रति, नहिं दृश्य आत्मा है तथा।
विक्षेप में एकाग्र हूँ मैं, यों अवस्थित सर्वथा।।

3 समाध्यासादिविक्षिप्तौ व्यवहारः समाधये।
एवं विलोक्य नियममेवमेवाहमास्थितः।।

अनुवादः सम्यक् अध्यास आदि के कारण विक्षेप होने पर ही समाधि का व्यवहार होता है। ऐसे नियम को देखकर समाधिरहित मैं स्थित हूँ।

हिंदी छंद

अध्यास अरु विक्षेप से, प्रचलित समाधि की पृथा।
चल चित्त के सारे नियम, मैं तो अचल हूँ सर्वथा।।

---

4 हेयोपादेयविरहादेवं हर्षविषादयोः।
अभावादद्य हे ब्रह्मन्नेवमेवाहमास्थितः।।

अनुवादः हे ब्रह्मन्! हेय और उपादेय के वियोग से जो हर्ष और विषाद होता है उसके अभाव में अब मैं जैसा हूँ वैसा ही स्थित हूँ।

हिंदी छंद

ब्रह्मन्! न कुछ भी ग्राह्य है, नहिं त्याज्य हर्ष विषाद ही।
है सब विलय को प्राप्त ये, यों मैं अवस्थित नित्य ही।।

---

5 आश्रमानाश्रमं ध्यानं चित्तस्वीकृतवर्जनम्।
विकल्पं मम वीक्ष्यैतैरेवमेवाहमास्थितः।।

अनुवादः आश्रम है, अनाश्रम है, ध्यान है और चित्त का स्वीकार और वर्जन है। उन सबसे उत्पन्न हुए अपने विकल्प को देखकर मैं उन तीनों से मुक्त हुआ स्थित हूँ।

हिंदी छंद

आश्रम, अनाश्रम, ध्यान अथवा चित्त स्वीकृत त्याग ही।
निज कल्पना लखता हुआ यों, मैं अवस्थित नित्य ही।।

6 कर्मनुष्ठानमज्ञानाद्यथैवोपरमस्तथा।
बुद्धवा सम्यगिदं तत्त्वमेवमेवाहमास्थितः।।

अनुवादः जैसे कर्म का अनुष्ठान अज्ञान से है, वैसे ही उसके त्याग का अनुष्ठान भी अज्ञान से है। इस तत्त्व को भली भाँति जानकर मैं कर्म अकर्म से मुक्त हुआ अपने में स्थित हूँ।

हिंदी छंद

है कर्म विधि अज्ञान से, उपरामता भी है तथा।
यह तत्त्व सम्यक् जानकर यों, मैं अवस्थित सर्वथा।।

---

7 अचिन्त्यं चिन्त्यमानोऽपि चिन्तारूपं भजत्यसौ।
त्यक्त्वा तद्भावनं तस्मादेवमेवाहमास्थितः।।

अनुवादः अचिन्त्य (ब्रह्म) का चिन्तन करता हुआ भी वह पुरुष चिन्ता को ही भजता है। इसलिए उस भाव को त्यागकर मैं भावनामुक्त हुआ स्थित हूँ।

हिंदी छंद

चिन्तन अचिन्त्य स्वरूप का, करता हुआ चिन्तित वृथा।
तज भावना चिन्तनमयी यों, मैं अवस्थित सर्वथा।।

---

8 एवमेव कृतं चेन स कृतार्थो भवेदसौ।
एवमेव स्वभावो यः स कृतार्थो भवेदसौ।।

अनुवादः जिसने साधनों के क्रियारहित स्वरूप अर्जित किया है– वह पुरुष कृतकृत्य है और जो ऐसा ही (स्वभाव से ही) स्वभाव वाला है वह तो कृतकृत्य है ही, इसमें कहना ही क्या।

हिंदी छंद

निष्क्रिय, क्रिया से साधकर साधक जहाँ कृतकृत्य हो।
जो है स्वतः ही सिद्ध, फिर उसको कृतारथ क्या कहो।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां द्वादशं प्रकरणं समाप्तम्।)

13

तेरहवाँ प्रकरण

जनक की सुखमय अवस्था

1 अकिंचनभवं स्वास्थ्यं कौपीनत्वेऽपि दुर्लभम्।
त्यागादाने विहायास्मादहमासे यथासुखम्।।

अनुवाद: नहीं है कुछ भी— ऐसे भाव से पैदा हुआ जो स्वास्थ्य (चित्त की स्थिरता) है वह कोपीन को धारण करने पर भी दुर्लभ है। इसीलिए त्याग और ग्रहण दोनों को छोड़कर मैं सुखपूर्वक स्थित हूँ।

हिंदी छंद

नहिं चित्त की स्थिरता, अकिंचनता सधे कौपीन से।
सुख से सुनिश्चित मैं रहूँ, त्यागूँ किसे पकड़ूँ किसे।।

2 कुत्रापि खेदः कायस्य जिह्वा कुत्रापि खिद्यते।
मनःकुत्रापि त्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितःसुखम्।।

अनुवाद: कहीं तो शरीर का दुःख है, कहीं वाणी दुःखी है, कहीं मन दुःखी होता है। इसलिए तीनों को त्यागकर मैं पुरुषार्थ में (आत्मानन्द में) सुखपूर्वक स्थित हूँ।

हिंदी छंद

हो खेद काया को कभी, जिह्वा कभी मन है दुःखी।
रहता पृथक् मैं तीन से, पुरुषार्थ में स्थिर हूँ सुखी।।

3 कृतं किमपि नैव स्यादिति संचिन्तय तत्त्वतः।
यदा यत्कर्तुमायाति तत्कृत्वाऽऽसे यथासुखम्।।

अनुवादः किया हुआ कर्म कुछ भी वास्तव में आत्मकृत नहीं होता। ऐसा यथार्थ विचारकर मैं जब जो कुछ कर्म करने को आ पड़ता है उसे करके सुखपूर्वक स्थित हूँ।

हिंदी छंद

जो भी क्रियाएँ हो रहीं, वे तत्त्वतः मुझमें नहीं।
यह जान जो आया किया, सुख से अवस्थित सब कहीं।।

---

4 कर्मनैष्कर्म्यनिर्बन्धभावा देहस्थयोगिनः।
संयोगायोगविरहादहमासे यथासुखम्।।

अनुवादः कर्म और निष्कर्म के बन्धन से संयुक्त भाव वाले शरीर में आसक्त जो योगी है मैं इस देह के संयोग वियोग से सर्वदा पृथक् होने के कारण सूखपूर्ण स्थित हूँ।

हिंदी छंद

देहाभिमानी कर्म या निष्कर्म का आग्रह करे।
मुझको न योग वियोग कुछ, सुख से रहूँ इनसे परे।।

---

5 अर्थानर्थौ न मे स्थित्या गत्या वा शयनेन वा।
तिष्ठन् गच्छन् स्वपंस्तम्मादहमासे यथासुखम्।।

अनुवादः मुझको ठहरने से, चलने से या सोने से अर्थ और अनर्थ कुछ भी नहीं है। इस कारण 'मैं' ठहरता हुआ, जाता हुआ और सोता हुआ भी सुखपूर्वक स्थित हूँ।

हिंदी छंद

गति से अगति से शयन से कुछ हानि लाभ न मैं गहूँ।
बैठा हुआ चलता हुआ सोता हुआ सुख से रहूँ।।

6 स्वपतो नास्ति मे हानिः सिद्धिर्यत्नवतो न वा।
नाशोल्लासौ विहायास्मादहमासे यथासुखम्।।

अनुवादः सोते हुए मुझे हानि नहीं है, न यत्न करते हुए मुझे सिद्धि है। इसलिये मैं हानि–लाभ दोनों को छोड़कर सुखपूर्वक स्थित हूँ।

हिंदी छंद | सोते हुए भी हानि नहिं, नहिं यत्न से कुछ सिद्धि है।
सुख से रहूँ निश्चल सदा, मुझमें न कुछ क्षय वृद्धि है।।

---

7 सुखादिरूपानियमं भावेष्वालोक्य भूरिशः।
शुभाशुभे विहायास्मादहमासे यथासुखम्।।

अनुवादः इसलिए अनेक परिस्थितियों में सुखादि की अनित्यता को बारम्बार देखकर और शुभ और अशुभ दोनों को छोड़कर मैं सुखपूर्वक स्थित हूँ।

हिंदी छंद | सुख दुःख नियमित हैं नहीं, देखा अनेकों बार ही।
रहता सुखी मैं नित्य ही, तज शुभ अशुभ व्यवहार ही।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां त्रयोदशप्रकरणं समाप्तम्।)

14

चौदहवाँ प्रकरण

शान्ति का उपदेश

1 प्रकृत्या शून्यचित्तो यः प्रमादाद्भावभावनः।
निद्रितो बोधित इव क्षीणसंसरणो हि सः।।

अनुवादः राजा जनक कहते हैं– "जो स्वभाव से ही शून्य–चित्त है पर प्रमाद से विषयों की भावना करता है और सोता हुआ भी जागने के समान है– वह पुरुष संसार से मुक्त है।"

हिंदी छंद

जो शून्य चित्त स्वभाव से है, भोग राग बिगार से।
निद्रित हुआ–सा जागता है, वह रहित संसार से।।

2 क्व धनानि क्व मित्राणि क्व मे विषयदस्यवः।
क्व शास्त्रं क्व च विज्ञानं यदा में गलिता स्पृहा।।

अनुवादः जब मेरी स्पृहा (इच्छा) नष्ट हो गई तब मेरे लिये कहाँ धन, कहाँ मित्र, कहाँ विषयरूपी चोर हैं, कहाँ शास्त्र है, कहाँ ज्ञान है?

हिंदी छंद

इच्छा गलित मेरी हुई तब धन कहाँ! परिजन कहाँ!
विज्ञान कहँ! अरु शास्त्र कहँ! मुझको विषय डाकू कहाँ!

3 विज्ञाते साक्षिपुरुषे परमात्मनि चेश्वरे।
नैराश्ये बन्धमोक्षे च न चिन्ता मुक्तये मम।।

अनुवादः साक्षी पुरुष, परमात्मा, ईश्वर, आशा–मुक्ति तथा बन्ध–मुक्ति के जान लेने पर मुझे मुक्ति के लिए चिन्ता नहीं है।

हिंदी छंद

कूटस्थ साक्षी ब्रह्म ईश्वर, जानने पर फिर यहाँ।
आस्था न बन्धन मोक्ष की हो, मुक्ति की चिन्ता कहाँ।।

---

4 अन्तर्विकल्पशून्यस्य बहिः स्वच्छन्दचारिणः।
भ्रान्तस्येव दशास्तास्तास्तादृशा एव जानते।।

अनुवादः जो भीतर विकल्प से शून्य है और बाहर भ्रान्त हुए पुरुष की भाँति स्वच्छन्दचारी है। ऐसे पुरुष की भिन्न–भिन्न दशाओं को वैसी ही दशा वाले पुरुष जानते हैं।

हिंदी छंद

है कल्पना से शून्य मन, स्वच्छन्द गति है बाह्य जो।
है भ्रान्त–सी उसकी दशा, जाने उसे वैसा ही जो।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां चतुर्दशप्रकरणं समाप्तम्।)

15

पन्द्रहवाँ प्रकरण

तत्व का उपदेश

1 यथा तथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

अनुवादः सत्व बुद्धि बाला पुरुष थोड़े से उपदेश से ही कृतार्थ होता है। असत् बुद्धि वाला पुरुष आजीवन जिज्ञासा करके उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

उत्तम सहज निष्ठा नृपति की, देख दृढ़ता के लिए।
मुनिवर कृपा करते हुए उपदेश तात्त्विक फिर दिये।।

---

2 मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो वैषयिको रसः।
एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरु।।

अनुवादः विषयों में विरसता मोक्ष है, विषयों में रस बन्ध है। इतना ही विज्ञान है। तू जैसा चाहे वैसा कर।

हिंदी छंद

कृतकृत्य होता स्वल्प ही, उपदेश से सद्बुद्धि नर।
जिज्ञासु आजीवन हुआ मोहित रहे मतिमन्द नर।।

3 वग्मिप्राज्ञमहोद्योगं जन मूकजडालसम्।
करोति तत्वबोधोऽयमतस्त्यक्तो बभुक्षुभिः।।

अनुवादः यह तत्त्व–बोध वाचाल, बुद्धिमान और महाउद्योगी पुरुष को गूंगा, जड़ और आलसी कर जाता है। इसलिए भोग की अभिलाषा रखने वालों के द्वारा तत्त्व–बोध त्यक्त है।

हिंदी छंद

है मोक्ष विषयों में विरति, बन्धन विषय रति परिहरो।
विज्ञान बस इतना ही है, जैसा रुचे वैसा करो।।

---

4 न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्ता न वा भवान्।
चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर।।

अनुवादः तू शरीर नहीं है, न तेरा शरीर है, तू भोक्ता और कर्त्ता भी नहीं है। तू वो चैतन्यरूप है, नित्य है, साक्षी है, निरपेक्ष है। तू सुखपूर्वक विचर।

हिंदी छंद

तुम या तुम्हारा देह नहिं, कर्ता न भोक्ता हो अजय।
चैतन्य तुम साक्षी सदा, निरपेक्ष हो विचरो अभय।।

---

5 रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनस्ते कदाचन्।
निर्विकल्पोऽसि बोधात्मा निर्विकारः सुखं चर।।

अनुवादः राग और द्वेष मन के धर्म हैं। तू कभी मन नहीं है। तू निर्विकल्प, निर्विकार, बोध–स्वरूप आत्मा है। तू सुखपूर्वक विचर।

हिंदी छंद

रागादि मन के धर्म हैं, मन भी तुम्हारा है किधर।
तुम निर्विकल्पक बोधमय, अविकार हो विचरो निडर।।

6 सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
विज्ञान निरहंकारो निर्ममस्त्वं सुखी भव।।

अनुवादः सब भूतों में आत्म को तथा सब भूतों को आत्मा जानकर तू अहंकाररहित और ममतारहित है। तू सुखी हो।

हिंदी छंद

सब प्राणियों में आत्म को अरु आत्म में सब जग लखो।
हो तुम सुखी निर्मम हुए, मन में अहंता मत रखो।।

---

7 विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरंगा इव सागरे।
तत्त्वमेव न सन्देहश्चिन्मूर्ते विज्वरो भव।।

अनुवादः जिसमें यह संसार तरंगों की भाँति स्फुरित होता है वह तू ही है, इसमें सन्देह नहीं है। हे चैतन्य स्वरूप! तू ज्वररहित हो (सन्तापरहित हो)।

हिंदी छंद

हो विश्व की फुरना जहाँ, ज्यों सिन्धु में लहरें अहो।
तुम हो वही सन्देह नहिं, चिद्रूप! निस्सन्ताप हो।।

---

8 श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व नात्र मोहं कुरुष्व भोः।
ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः।।

अनुवादः हे तात! श्रद्धाकर, श्रद्धाकर। इसमें मोह मत कर। तू ज्ञान–स्वरूप, भगवान्–स्वरूप आत्मा है तथा प्रकृति से परे है।

हिंदी छंद

श्रद्धालु हो! श्रद्धालु हो! अतिप्रिय! न इसमें मोह कर।
सर्वज्ञ आत्मा ज्ञानमय, तुम हो प्रकृति से नित्य पर।।

9 गुणैः संवेष्टितो देहस्तिष्ठत्यायाति च।
आत्मा न गन्ता नागन्ता किमेनमनुशोचसि।।

अनुवादः गुणों से लिप्त यह शरीर रहता है आता है और जाता है किन्तु आत्मा न जाने वाला है, न आने वाला। इसके लिये क्यों सोच करता है।

हिंदी छंद

गुण क्रिया–संयुत देह थिर, आया करे जाया करे।
आत्मा न आए जाए कहीं, तू शोक क्या इसका करे।।

---

10 देहस्तिष्ठतु कल्पान्तं गच्छत्वद्यैव वा पुनः।
क्व वृद्धिः क्व च वा हानिस्तव चिन्मात्ररूपिणः।।

अनुवादः देह चाहे कल्प के अन्त तक रहे, चाहे वह अभी चली जाये, तुम चैतन्यरूप वालों की कहाँ वृद्धि है, कहाँ नाश है।

हिंदी छंद

कया अभी हो नष्ट चाहे, स्थिर प्रलय पर्यन्त हो।
चिद्रूप हो तुम, क्या तुम्हारी हानि अथवा वृद्धि हो।।

---

11 त्वय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः।
उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धिर्न वा क्षतिः।।

अनुवादः तुझ अनन्त महासमुद्र में विश्वरूप तरंग अपने स्वभाव से उदय और अस्त को प्राप्त होती है किन्तु न तेरी वृद्धि है, न नाश है।

हिंदी छंद

तुम हो महासागर अमित, तुममें लहर सम विश्व यह।
चाहे सहज ही उठे या नहिं क्या तुम्हें क्षय वृद्धि रह।।

12 तात चिन्मात्ररूपोऽसि न ते भिन्नमिदं जगत्।
अतः कस्य कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना।।

अनुवादः हे तात! तू चैतन्यरूप है, तेरा यह जगत् तुझसे भिन्न नहीं है। इसलिए हेय और उपादेय की कल्पना किसकी, क्योंकर और कहाँ हो सकती है।

हिंदी छंद

हे तात! चेतनरूप तुम, जगभिन्न यह तुमसे नहीं।
किसके ग्रहण अरु त्याग की, फिर कल्पना क्या हो कहीं।।

---

13 एकस्मिन्नव्यये शान्ते चिदाकाशेऽमले त्वयि।
कुतो जन्म कुतः कर्म कुतोऽहंकार एव च।।

अनुवादः तुझ एक निर्मल, अविनाशी, शान्त और चैतन्यरूप आकाश में कहाँ जन्म है, कहाँ कर्म है और कहाँ अहंकार?

हिंदी छंद

तुम एक चेतन शान्त, अविनाशी विमल आकाश हो।
ये जन्म कर्म अहंपना, तुममें कहाँ होंगे कहो।।

---

14 यत्वं पश्यसि तत्रैकस्त्वमेव प्रतिभाससे।
किं पृथग्भासते स्वर्णात्कटकांगदनूपुरम।।

अनुवादः जिसको तू देखता है उसमें एक तू ही भासता है। क्या कंगना, बाजूबन्द और नूपुर सोने से भिन्न भासते हैं।

हिंदी छंद

जो जो निहारो तुम यहाँ, उसमें तुम्हीं इक भासते।
क्या स्वर्ण से कटकादि भूषण, भिन्न रूप प्रकाशते।।

15 अयं सोऽहमयं नाहं विभागमिति सन्त्यज।
सर्वमात्मेति निश्चित्य निःसंकल्पः सुखीभव।।

अनुवादः 'यह मैं हूँ' 'यह मैं नहीं हूँ' ऐसे विभाग को छोड़ दे। 'सब आत्मा है' ऐसा निश्चय करके तू संकल्परहित हो, सुखी हो।

हिंदी छंद

मैं यह नहीं हूँ वह तथा यह मैं, विभाग तजो यही।
संकल्प भी तज हो सुखी, है आत्म सब निश्चय सही।।

---

16 तवैवाज्ञानतो विश्वं त्वमेकः परमार्थतः।
त्वत्तोऽन्यो नास्ति संसारी नासंसारी च कश्चन।।

अनुवादः तेरे ही अज्ञान से विश्व है। परमार्थतः तू एक है। तेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है– न संसारी और न असंसारी है।

हिंदी छंद

अज्ञान से ही बस तुम्हारे विश्व है, परमार्थतः।
हो एक तुम, नहिं भिन्न तुमसे जीव ईश्वर कुछ अतः।।

---

17 भ्रान्तिमात्रमिदं विश्वं न किंचिदिति निश्चयी।
निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किंचिदिव शाम्यति।।

अनुवादः यह विश्व भ्रान्तिमात्र है और कुछ नहीं है। ऐसा निश्चयपूर्वक जानने वाला वासनारहित और चैतन्यमात्र है। वह ऐसी शान्ति को प्राप्त है मानो कुछ नहीं है।

हिंदी छंद

भ्रममात्र ही नहिं वस्तु कुछ, यह जगत् दृढ़ निश्चय रखे।
निर्वासनिक, चिन्मात्र, उपशम वह अकिञ्चन सा लखे।।

18 एक एव भवाम्भोधावासीदस्ति भविष्यति।
न ते बन्धोऽस्ति मोक्षो वा कृतकृत्यः सुखं चर।।

अनुवादः संसाररूपी समुद्र में तू एक ही था और होगा। तेरा बन्ध और मोक्ष नहीं है। तू कृतकृत्य होकर सुखपूर्वक विचर।

हिंदी छंद

भवसिन्धु में था एक ही, अरु है रहेगा, क्यों दुःखी।
बन्धन तुम्हें नहिं मोक्ष भी, कृत–कृत्य हो विचरो सुखी।।

---

19 मा सङ्कल्पविकल्पाभ्यां चित्तं क्षोभय चिन्मय।
उपशाम्य सुखं तिष्ठ स्वात्मन्यानन्दविग्रहे।।

अनुवादः हे चिन्मय! तू चित्त को संकल्प और विकल्पों से क्षोभित मत कर। शान्त होकर आनन्दपूरित अपने स्वरूप मे सुखपूर्वक स्थित हो।

हिंदी छंद

चिद्रूप! मत संकल्प और विकल्प से चित क्षुभित हो।
आनन्द रूप निजात्म में, उपशान्त हो सुख से रहो।।

---

20 त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किञ्चिद्धृदि धारय।
आत्मा त्वम्मुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यसि।।

अनुवादः सर्वत्र ही ध्यान को त्यागकर हृदय में कुछ भी धारण मत कर। तू आत्मा मुक्त ही है। तू विमर्श करके क्या करेगा।

हिंदी छंद

दो त्याग चिन्तन सर्वथा, मत कुछ हृदय में ध्यान हो।
मुक्तात्म हो तुम नित्य ही, अब क्या विचारोगे कहो।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां पंचदशं प्रकरणं समाप्तम्।)

16

सोलहवाँ प्रकरण

विशेष ज्ञान का उपदेश

1 आचक्ष्व शृणु वा ताता नानाशास्त्राण्यनेकशः।
तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वं विस्मरणादृते।।

अनुवादः हे तात! अनेक शास्त्रों को अनेक प्रकार से तू कह अथवा सुन लेकिन सब के विस्मरण के बिना तुझे स्वास्थ्य (शान्ति) नहीं मिलेगी।

हिंदी छंद

बहु शास्त्र बारंबार प्रिय! सुनते सुनाते भी रहो।
इनको भुलाए बिन तुम्हें, नहिं स्वस्थता होगी अहो।।

---

2 भोगं कर्म समाधिं वा कुरु विज्ञ तथापि ते।
चित्तं निरस्तसर्वाशमत्यर्थं रोचयिष्यति।।

अनुवादः हे विज्ञ! (ज्ञान—स्वरूप), भोग, कर्म अथवा समाधि को तू चाहे साधे, तो भी तेरा चित्त स्वभाव से सभी आशयों से रहित होने पर भी अत्यधिक लोभायमान रहेगा।

हिंदी छंद

भोगी रहो योगी रहो, कर्मी रहो तुम विज्ञ हे।
आशा रहित भी चित्त की, सर्वातिशय में रुचि रहे।।

3 आयासात् सकलो दुःखी नैनं जानाति कश्चन।
अननैवोपदेशेन धन्यः प्राप्नोति निर्वृतिम्।।

अनुवादः प्रयास से सब लोग दुःखी हैं, इसको कोई नहीं जानता है। इसी उपदेश से भाग्यवान लोग निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

हिंदी छंद

नहिं जानता कोई इसे, आयास से हैं सब दुःखी।
केवल इसी उपदेश से, सुकृती परम होता सुखी।।

---

4 व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्तालस्याधुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित्।।

अनुवादः जो आँख के खोलने और ढकने के व्यापार से दुःखी होता है, वह आलसीशिरोमणि का ही सुख है। दूसरे किसी का नहीं।

हिंदी छंद

जो नेत्र की पलकें गिराने अरु उठाने में क्षुभित।
सुख है उसी परम आलसी को पा सके नहिं अन्य नित।।

---

5 इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तं यदा मनः।
धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षं तदा भवेत्।।

अनुवादः यह किया गया है और यह नहीं किया गया, ऐसे द्वन्द्वसे जब मन मुक्त हो तब वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रति उदासीन हो जाता है।

हिंदी छंद

यह कर चुका यह ना किया, इस द्वन्द्वसे मन मुक्त जब।
धर्मार्थ अरु कामादि से, निरपेक्ष यह हो जाये तब।।

6 विरक्तो विषयद्वेष्टा रागी विषयलोलुपः।
ग्रहमोक्षविहीनस्तु न विरक्तो न रागवान्।।

अनुवादः विषय का द्वेषी विरक्त है। विषयलोलुप रागी है। जो ग्रहण और त्याग दोनों से रहित है वह न विरक्त है, न रागवान है।

हिंदी छंद

रागी विषयलोलुप विरागी विषय द्वेषी प्राय है।
इस ग्रहण त्याग विहीन को, वैराग राग न भाय है।।

---

7 हेयोपदेयता तावत् संसारविटपाङ्कुरः।
स्पृहा जीवति यावद्वै निर्विचारदशास्पदम्।।

अनुवादः जब तक स्पृहा (तृष्णा) जीवित है– जो कि अविवेक की दशा है– तब तक हेय और उपादेय (त्याग और ग्रहण) भी जीवित है– जो कि संसाररूपी वृक्ष का अंकुर है।

हिंदी छंद

अविवेकता की दशायुत, तृष्णा रहे जीवित जभी।
है ग्राह्य त्याज्य स्वरूप यह, संसार द्रुम अंकुर तभी।।

---

8 प्रवृत्तौ जायते रागो निवृत्तौ द्वेष एव हि।
निर्द्वन्द्वो बालवद्धीमानेवमेव व्यवस्थितः।।

अनुवादः प्रवृत्ति से राग, (आसक्ति) व निवृत्ति (त्याग) से द्वेष पैदा होता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष द्वन्द्वमुक्त बालक के समान जैसा है वैसा ही रहता है।

हिंदी छंद

हो उदित राग प्रवृत्ति में, अरु द्वेष होत निवृत्ति में।
ज्ञानी व्यवस्थित बालवत्, निर्द्वन्द्व है सब वृत्ति में।।

9 हातुमिच्छति संसारं रागी दुःखजिहासया।
वीतरागी हि निर्दुःखस्तस्मिन्नपि न खिद्यति।।

अनुवादः रागी पुरुष दुःख से बचने के लिए संसार को त्यागना चाहता है लेकिन वीतरागी दुःखमुक्त होकर संसार के बीच भी खेद को प्राप्त नहीं होता।

हिंदी छंद | दुःख दूर हो रागी अतः संसार तजना चाहता।
निर्दुःख वैरागी यहाँ नहिं खेद कोई पावता।।

---

10 यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा।
न च योगी न वा ज्ञानी केवलं दुःखभागसौ।।

अनुवादः जिसका मोक्ष के प्रति अहंकार है और वैसी ही शरीर के प्रति ममता है वह न तो ज्ञानी है और न योगी है। वह केवल दुःख का भागी है।

हिंदी छंद | अभिमान जिसका मोक्ष में भी, देह में ममता तथा।
योगी न वह ज्ञानी न वह, है दुःखभागी सर्वथा।।

---

11 हरो यद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजोऽपि वा।
तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते।।

अनुवादः यदि तेरा उपदेशक शिव है, विष्णु है अथवा ब्रह्मा है तो भी सबके विस्मरण के बिना तुझे स्वास्थ्य (शान्ति) नहीं होगी।

हिंदी छंद | विधि विष्णु शिव भी यदि तुम्हारे, होयँ उपदेशक सभी।
तो भी न सबके विस्मरण बिन, स्वस्थता होगी कभी।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां षोडशकं प्रकरणं समाप्तम्।)

17

सत्रहवाँ प्रकरण

तत्त्व स्वरूप वर्णन

1 तेन ज्ञानफलं प्राप्तं योगाभ्यासफलं तथा।
तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्यमेकाकी रमते तु यः।।

अनुवादः जो पुरुष तृप्त है, शुद्ध इन्द्रिय वाला है और सदा एकाकी रमण करता है उसी को ज्ञान और योगाभ्यास का फल प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

फल ज्ञान का या योग के अभ्यास का पाता वही।
जो शुद्ध इन्द्रिय, तृप्त मन, रमता अकेला नित्य ही।।

---

2 न कदाचिज्जगत्यस्मिंस्तत्त्वज्ञो हन्त खिद्यति।
यह एकेन तेनेदं पूर्णं ब्रह्माण्डमण्डलम्।।

अनुवादः हन्त! तत्त्वज्ञानी इस जगत् में कभी खेद को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि उसी एक से यह ब्रह्माण्ड मण्डल पूर्ण है।

हिंदी छंद

तत्त्वज्ञ इस संसार में, नहिं खिन्न होता है कभी।
ब्रह्माण्ड मण्डल पूर्ण अह! उस एक से क्योंकि सभी।।

3 न जातु विषयः केऽपि स्वारामं हर्षयन्त्यमी।
सल्लकीपल्लव प्रीतमिवेभन्निम्बपल्लवाः।।

अनुवादः जैसे सल्लकी के पत्तों से प्रसन्न हुए हाथी को नीम के पत्ते हर्षित नहीं करते हैं, वैसे ही ये विषय आत्मा में रमण करने वाले को कभी नहीं हर्षित करते हैं।

हिंदी छंद
ये विषय स्वात्माराम को, नहिं हर्ष कारक हों कभी।
कटु निंब में क्या गज रमे, पल्लव मधुर पाता जभी।।

---

4 यस्तु भोगेषु भुक्तेषु न भवत्यधिवासितः।
अभुक्तेषु निराकांक्षी तादृशो भव दुर्लभः।।

अनुवादः जो भोगे हुए भोगों में वासना नहीं रखता तथा भोगे हुए विषयों के प्रति आकांक्षा नहीं करता, ऐसा मनुष्य संसार में दुर्लभ है।

हिंदी छंद
भोगे हुए भी भोग में, आसक्त जो होता नहीं।
इच्छा न नूतन विषय की, दुर्लभ मनुज वह सब कहीं।।

---

5 बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते।
भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलो हि महाशयः।।

अनुवादः इस संसार में भोग की इच्छा रखने वाले और मोक्ष की इच्छा रखने वाले दोनों देखे जाते हैं लेकिन भोग और मोक्ष दोनों के प्रति निराकांक्षी (अनिच्छा वाला) विरला महाशय ही मिलेगा।

हिंदी छंद
भोगोच्छु भी दिखते यहाँ, दिखते मुमुक्षु भी निहित।
विरला महात्मा भोग की अरु मोक्ष की इच्छा रहित।।

6 धर्मार्थकाममोक्षेषु जीविते मरणे तथा।
कस्याप्युदारचित्तस्य हेयोपादेयता न हि।।

अनुवादः कोई उदारचित्त ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जीवन और मृत्यु के प्रति हेय उपादेय का भाव नहीं रखता।

हिंदी छंद

धर्मार्थ कामादिक तथा जीवन मरण में समपना।
विरले उदार विचार को नहिं ग्राह्य त्याज्य विकल्पना।।

---

7 वाञ्छा न विश्वविलये द्वेषस्तस्य च स्थितौ।
यथा जीविकया तस्माद्धन्य आस्ते यथासुखम्।।

अनुवादः जिसमें विश्व के विलय की इच्छा नहीं है और न उसकी स्थिति के प्रति द्वेष है, इसलिए वह धन्य पुरुष यथाप्राप्य आजीविका से सुखपूर्वक जीता है।

हिंदी छंद

वाञ्छा न विश्व विलीन की या स्थित रहे नहिं द्वेष है।
जैसी मिले है जीविका सुकृती रहे बिन क्लेश है।।

---

8 कृतार्थोऽनेन ज्ञानेनेत्येवं गलितधीः कृती।
पश्यञ्छृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम्।।

अनुवादः इस ज्ञान से कृतार्थ अनुभव कर, गलित हो गई है बुद्धि जिसकी, ऐसा कृतकार्य पुरुष देखता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ खाता हुआ सुखपूर्वक रहता है।

हिंदी छंद

इस ज्ञान से कृत कृत्य हूँ, बस शान्त ही लखता हुआ।
रहता सुखी सुनता परसता, सूँघता खाता हुआ।।

9 शून्यादृष्टिर्वृथा चेष्टा विफलानीन्द्रियाणि च।
न स्पृहा न विरक्तिर्वाक्षीणसंसारसागरे।।

अनुवादः विसका संसार–सागर क्षीण हो गया है, ऐसे पुरुष में न तृष्णा है, न विरक्ति है। उसकी दृष्टि शून्य हो गई है, चेष्टा व्यर्थ हो गई है और इन्द्रियाँ विफल हो गई हैं।

हिंदी छंद

संसार के उच्छिन्न होते, दृष्टि चेष्टा भी वृथा।
उपराम होतीं इन्द्रियाँ, वैराग राग न हो तथा।।

---

10 न जागर्ति न निद्राति नोन्मीलति न मीलति।
अहो परंदशा क्वापि वर्तते मुक्तचेतसः।।

अनुवादः वह न जागता है, न मरता है, न पलक खोलता है, न पलक बन्द करता है। अहो! मुक्तचेतस् की कैसी परम (उत्कृष्ट) दशा होती है।

हिंदी छंद

नहिं जागता सोता नहीं, खोले पलक नहिं अन्ध सा।
हे मुक्त जीवन की अहो! उत्तम अनुपम यह दशा।।

---

11 सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः।
समस्तवासनामुक्तो मुक्तः सर्वत्र राजते।।

अनुवादः मुक्त पुरुष सर्वत्र स्वस्थ, (शान्त) सर्वत्र विमल आशय वाला दिखाई देता है और सब वासनाओं से रहित सर्वत्र सुशोभित होता है।

हिंदी छंद

वह शान्त दिखता सब कहीं, सब वासनाओं से रहित।
सर्वत्र विमलाशय हुआ, ज्ञानी सुशोभित होत नित।।

12 पश्यञ्छृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गृह्णन् वदन् व्रजन्।
ईहितानीहितैर्मुक्तो मुक्त एव महाशयः।।

अनुवादः देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, ग्रहण करता हुआ, बोलता हुआ, चलता हुआ, हित और अहित से मुक्त महाशय निश्चय ही जीवन्मुक्त है।

हिंदी छंद

सब देखता सुनता समझता, बोलता खाता हुआ।
करता हुआ भी मुक्त है, रागादि से छूटा हुआ।।

---

13 न निन्दति न च स्तौति न हृष्यति न कुप्यति।
न ददाति न गृह्णाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः।।

अनुवादः मुक्तपुरुष सर्वत्र रसरहित है। वह न निन्दा करता है, न स्तुति करता है, न हर्षित होता है, न क्रुद्ध होता है, न देता है, न लेता है।

हिंदी छंद

निन्दा प्रशंसा से पृथक्, हर्षित कुपित होता नहीं।
देता न लेता मुक्त वह, रसहीन ज्ञानी सब कहीं।।

---

14 सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितम्।
अविह्वलमनाः स्वस्थो मुक्त एव महाशयः।।

अनुवादः प्रीतियुक्त स्त्री और समीप में उपस्थित मृत्यु को देखकर जो महाशय अविचलमना और स्वस्थ रहता है वह निश्चय ही मुक्त है।

हिंदी छंद

लख कामिनी को भी निकट या काल सम्मुख हो जभी।
मुक्तात्म निष्ठावान् बुध, विचलित न होता है कभी।।

15 सुखे दुःखे नरे नार्यां संपत्सु च विपस्तु च।
विशेषो नैव धीरस्य सर्वत्र समदर्शिनः।।

अनुवादः समदर्शी धीर के लिए सुख और दुःख में, नर और नारी में, सम्पत्ति और विपत्ति में कहीं भेद नहीं है।

हिंदी छंद
सुख दुःख में नर नारि में सम्पद् विपद् में तथा।
समदर्शी ज्ञानी धीर को, होता न कुछ आग्रह वृथा।।

---

16 न हिंसानैव कारुण्यं नौद्धत्यं न च दीनता।
नाश्चर्यं नैव च क्षोभः क्षीणसंसारणे नरे।।

अनुवादः क्षीण हो गया है संसार जिसका, ऐसे मनुष्य में न हिंसा है, न करुणा है, न उद्दण्डता है न दीनता, न आश्चर्य है, न क्षोभ!

हिंदी छंद
संसार जिसका क्षीण है, उसको न कार्य अकार्य कुछ।
हिंसा दया नहिं विनय अविनय, क्षोभ कुछ अद्भुत न कुछ।।

---

17 न मुक्तो विषयद्वेष्टा न वा विषयलोलुपः।।
असंसक्तमनाः नित्यं प्राप्ताप्राप्तमुपाश्नुते।।

अनुवादः मुक्तपुरुष न विषयों से द्वेष करने वाला है, न विषयलोलुप है। सदा आसक्तिरहित मन वाला होकर प्राप्त और अप्राप्त वस्तु का उपभोग करता है।

हिंदी छंद
वह विषय द्वेषी भी नहीं, नहिं विषयलोलुप मुक्त है।
निर्लिप्त मन रह नित्य, लाभालाभ में संतुष्ट है।।

18 समाधानासमाधानहिताहितविकल्पना:।
शून्यचित्तो न जानाति कैवल्यमिव संस्थित:।।

अनुवाद: शून्यचित्त पुरुष समाधान और असमाधान के, हित और अहित के विकल्प को नहीं जानता है। वह तो कैवल्य जैसा स्थित है।

हिंदी छंद | हित अहित असमाहित समाहित कल्पनाएँ भी महा।
नर शून्य चित्त न जानता कैवल्य सम संस्थित रहा।।

---

19 निर्ममो निरहंकारो न किञ्चिदिति निश्चित:।
अन्तर्गलितसर्वाश: कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

अनुवाद: भीतर से गलित हो गई हैं सब आशाएँ जिसकी, और जो निश्चयपूर्वक जानता है कि कुछ भी नहीं है— ऐसा ममतारहित, अहंकारशून्य पुरुष कर्म करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता।

हिंदी छंद | ममता अहंता शून्य सत से, भिन्न माया ग्रस्त है।
निश्चित हुआ आशा गलित, करता हुआ नहिं लिप्त है।।

---

20 मन:प्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जित:।
दशां कामपि संप्राप्तो भवेद्गलितमानस:।।

अनुवाद: जिसका मन गलित हो गया है और जिसके मन में कर्म, मोह, स्वप्न और जड़ता सब समाप्त हो गये हैं, वह पुरुष कैसी अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होता है।

हिंदी छंद | जाग्रत अवस्था भ्रान्ति निद्रा, स्वप्न से भी भिन्न वह।
अनुपम दशा को प्राप्त ज्ञानी, गलित मन निर्द्वन्द्ववह।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां सप्तदशकं प्रकरणं समाप्तम्।)

18
अठारहवाँ प्रकरण
शम का उपदेश

1 यस्य बोधोदये तावत्स्वप्नवद्भवति भ्रमः।
तस्मै सुखैकरूपाय नमः शान्ताय तेजसे।।

अनुवादः जिसके बोध के उदय होने पर समस्त भ्रान्ति स्वप्न के समान तिरोहित हो जाती है उस एकमात्र आनन्दरूप, शान्त और तेजोमय को नमस्कार है।

हिंदी छंद

जिसके कि बोध उदित हुए, यह स्वप्न सम भासे भुवन।
उस शान्त तेजोमय परम, आनन्दघन को है नमन।।

---

2 अर्जयित्वाऽखिलानर्थान् भोगानाप्नोति पुष्कलान्।
नहि सर्वपरित्यागमन्तरेण सुखी भवेत्।।

अनुवादः सारे धन कमाकर मनुष्य अतिशय भोगों को पाता है। लेकिन सबके त्याग के बिना सुखी नहीं होता।

हिंदी छंद

धन धान्य सारे जोड़कर, बहु भोग भोगो सब कहीं।
पर त्याग बिन सर्वस्व के, होता सुखी यह नर नहीं।।

3 कर्तव्यदुःखमार्तण्डज्वालादग्धान्तरात्मनः।
कुतः प्रशमपीयूषधारासारमृते सुखम्।।

अनुवादः कर्तव्य से पैदा हुए दुःखरूप सूर्य के ताप से जला अन्तर्मन जिसका, ऐसे पुरुष को शान्तिरूपी अमृतधारा की वर्षा के बिना सुख कहाँ है?

हिंदी छंद

कर्तव्य दुःख रवि ज्वाल से, संदग्ध मानस को यहाँ।
उपरति सुधा धारा बिना वर्षे, इसे सुख है कहाँ।।

---

4 भवोऽयं भावनामात्रो न किञ्चित्परमार्थतः।
नास्त्यभावः स्वभावानां भावाभावविभाविनाम्।।

अनुवादः यह संसार भावनामात्र है, परमार्थतः कुछ भी नहीं है। भावरूप और अभावरूप पदार्थों में स्थिर स्वभाव का अभाव नहीं है।

हिंदी छंद

है भावनामय विश्व यह, परमार्थ से कुछ भी नहीं।
पर है नहीं के बीच सुस्थिर, वस्तु रहती सब कहीं।।

---

5 न दूरं न च संकोचाल्लब्धमेवात्मनः पदम्।
निर्विकल्पं निरायासं निर्विकारं निरञ्जनम्।।

अनुवादः यह आत्मपद न तो दूर है, न संकोच से ही प्राप्त होता है। यह निर्विकल्प, निरायास निर्विकार और निरंजन है।

हिंदी छंद

संकोच और विकासमय, यह आत्म दूर समीप नहीं।
पद निर्विकल्पक श्रम रहित, अविकारि जिसमें दुःख नहीं।।

6 व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः।
वीतशोका विराजन्ते निरावरणदृष्टयः।।

अनुवादः मोहमात्र से निवृत्त होने पर और अपने स्वरूप के ग्रहणमात्र से वीतशोक और निरावरण दृष्टि वाले पुरुष शोभायमान होते हैं।

हिंदी छंद

व्यामोह के बाधित हुए, निजरूप की बस प्राप्ति से।
शोभित अनावृत दृष्टि ज्ञानी, शोक बिन सब भाँति से।।

---

7 समस्तं कल्पनामात्रमात्मामुक्तः सनातनः।
इति विज्ञाय धीरो हि किमभ्यस्यति बालवत्।।

अनुवादः समस्त जगत् कल्पनामात्र है और आत्मा मुक्त और सनातन है। ऐसा जानकर धीर पुरुष बालक के समान क्या चेष्टा करता है।

हिंदी छंद

बस कल्पनामय सब जगत्, आत्मा सनातन मुक्त है।
यह जान पण्डित बालवत्, किसमें रहे अभ्यस्त है।।

---

8 आत्माब्रह्मेति निश्चित्य भावाभावौ च कल्पितौ।
निष्कामः किं विजानाति किं ब्रूते च करोति किम्।।

अनुवादः आत्मा ब्रह्म है और भाव और अभाव कल्पित हैं। यह निश्चयपूर्वक जानकर निष्काम पुरुष क्या जानता है, क्या कहता है और क्या करता है।

हिंदी छंद

जीवात्म निश्चय ब्रह्म यह, हैं मृषा भाव अभाव ये।
निष्काम क्या जाने कहे क्या कर्म उससे हों नये।।

9 अयं सोऽहमयं नाहमितिक्षीणा विकल्पना।
सर्वमात्मेति निश्चित्य तूष्णीभूतस्य योगिनः।।

अनुवादः सब आत्मा है। ऐसा निश्चयपूर्वक जानकर शान्त हुए योगी की ऐसी कल्पनाएँ कि 'वह मैं हूँ' और 'वह मैं नहीं हूँ' क्षीण हो जाती हैं।

हिंदी छंद

सब आत्म ही निश्चय किए, मौनी सुयोगी को यहाँ।
यह वह तथा मैं यह नहीं, ये कल्पनाएँ भी कहाँ।।

---

10 न विक्षेपो न चैकाग्रयं नातिबोधो न मूढ़ता।
न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तस्य योगिनः।।

अनुवादः उपशान्त हुए योगी के लिये न विक्षेप है और न एकाग्रता है, न अतिबोध है और न मूढ़ता है, न सुख है, न दुःख है।

हिंदी छंद

विक्षेप नहिं एकाग्रता, अति बोध भी नहिं मूढ़ता।
उपशान्त योगी दुःख या सुख का विषय नहिं ढूँढता।।

---

11 स्वराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ च लाभालाभे जने वने।
निर्विकल्पस्वभावस्य न विशेषोऽस्ति योगिनः।।

अनुवादः निर्विकल्प स्वभाव वाले योगी के लिये राज्य और भिक्षवृत्ति में, लाभ और हानि में, समाज और वन में फर्क नहीं है।

हिंदी छंद

निजराज्य–भिक्षावृति–जन–वन–लाभ और अलाभ में।
है भेदयोगी के न कुछ भी निर्विकल्प स्वभाव में।।

12 क्व धर्मः क्व च वा कामः क्व चार्थः क्व विवेकता।
इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तस्य योगिनः।।

अनुवादः यह किया है और यह अनकिया है इस प्रकार के द्वन्द्व से मुक्त योगी के लिये कहाँ धर्म है, कहाँ अर्थ है, कहाँ विवेक?

हिंदी छंद

निर्द्वन्द्व योगी को यहाँ, धर्मार्थ कामादिक कहाँ।
यह कर चुका यह ना किया, होता विचार उसे कहाँ।।

---

13 कृत्यं किमपि न एव न कापि हृदि रंजना।
यथा जीवनमेवेह जीवन्मुक्तस्य योगिनः।।

अनुवादः जीवन्मुक्त योगी के लिये कर्तव्य कर्म कुछ भी नहीं है और न हृदय में कोई अनुराग है। वह संसार में यथाप्राप्त जीवन जीता है।

हिंदी छंद

कर्तव्य जीवनमुक्त को, नहिं राग भी मन में तथा।
है कुछ न योगी को यहाँ, बस भोगता जीवन यथा।।

---

14 क्व मोहः क्व च विश्वं क्व तद्ध्यानं क्व मुक्तता।
सर्वसंकल्पसीमायां विश्रान्तस्य महात्मनः।।

अनुवादः सम्पूर्ण संकल्पों के अन्त होने पर विश्रान्त हुए महात्मा के लिए कहाँ मोह और कहाँ संसार है, कहाँ वह ध्यान है, कहाँ मुक्ति है।

हिंदी छंद

सब कल्पनाओं की अवधि में, शान्ति योगी को यहाँ।
कहँ मोह या संसार चिन्तन, मोक्ष की इच्छा कहाँ।।

15 येन विश्वमिंदं दृष्टं स नास्तीति करोतु वै।
निर्वासनः किं कुरुते पश्यन्नपि न पश्यति।।

अनुवादः जिसने जगत् को देखा है वह भला उसे इन्कार भी करे, लेकिन वासनारहित पुरुष को क्या करना है। वह देखता हुआ भी नहीं देखता है।

हिंदी छंद

देखा है जिसने विश्व यह, वह है नहीं निश्चय करे।
लखता हुआ भी नहिं लखे, निर्वासनिक बुध क्या करे।।

---

16 येन दृष्टं परंब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति चिन्तयेत्।
किं चिन्तयति निश्चिन्तो द्वितीयं यो न पश्यति।।

अनुवादः जिसने पर–ब्रह्म को देखा है वह भला 'मैं ब्रह्म हूँ' का चिन्तन भी करे, लेकिन जो निश्चिन्त होकर दूसरा कोई नहीं देखता वह क्या चिन्तन करे।

हिंदी छंद

जिसने लखा पर बह्म, मैं वह बह्म–यह चिन्तन करे।
जो दूसरा नहिं देखता, निश्चिंत चिन्तन क्या करे।।

---

17 दृष्टो येनात्मविक्षेपो निरोधं कुरुते त्वसौ।
उदारस्तु न विक्षिप्तः साध्याभावात्करोतिकिम्।।

अनुवादः जो आत्मा में विक्षेप देखता है वह भला चित्त का निरोध करे, लेकिन विक्षेपमुक्त उदार पुरुष साध्य के अभाव में क्या करे।

हिंदी छंद

विक्षेप जिसने आत्म में देखा, करे वह साधना।
ज्ञानी न है विक्षिप्त फिर, क्या साध्य की सम्भावना।।

18 धीरो लोकविपर्यस्तो वर्त्तमानोऽपि लोकवत्।
न समाधिं न विक्षेपं न लेपं स्वस्य पश्यति।।

अनुवादः जो संसार की तरह बरतता हुआ भी संसार से भिन्न है। वह धीर पुरुष न अपनी समाधि को, न विक्षेप को और न बन्धन को ही देखता है।

हिंदी छंद

ज्ञानी अलौकिक वृत्ति फिर भी लोकवत् है वर्तता।
विक्षेप और समाधि नहिं, आरोप निज में दर्शता।।

---

19 भावाभावविहीनो यस्तृप्तो निर्वासनो बुधः।
नैव किंचित् कृतं तेन लोकदृष्टयाविकुर्वता।।

अनुवादः जो ज्ञानी पुरुष तृप्त है, भाव–अभाव से रहित है, वासना–रहित है वह लोक–दृष्टि से कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता है।

हिंदी छंद

है रहित भाव अभाव से, जो तृप्त बुध निर्वासनिक।
करता हुआ जन दृष्टि में, नहिं वस्तुतः करता तनिक।।

---

20 प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा नैव धीरस्य दुर्ग्रहः।
यदा यत्कर्तुमायाति तत्कृत्वा तिष्ठतः सुखम्।।

अनुवादः धीर पुरुष प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति में दुराग्रह नहीं रखता। वह जब कभी भी कुछ करने को आ पड़ता है उसको करके सुखपूर्वक रहता है।

हिंदी छंद

नहिं धीर को होता दुराग्रह, कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति में।
आया समय पर वह किया, सुख से रहा निज वृत्ति में।।

21 निर्वासनो निरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्तबन्धनः।
क्षिप्तः संसारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत्।।

अनुवादः ज्ञानी पुरुष वासनारहित, आलम्बन–रहित, स्वच्छन्द और बन्धन–रहित संसाररूपी वायु से प्रेरित होकर शुष्क पत्ते की भाँति व्यवहार करता है।

हिंदी छंद

निर्वासनिक आलम्बन नहिं, स्वच्छन्द बन्धन मुक्त भी।
है पवन प्रेरित पत्रवत् प्रारब्ध से चेष्टा सभी।।

---

22 असंसारस्य तु क्वापि न हर्षो न विषादता।
स शीतलमना नित्यं विदेह इव राजते।।

अनुवादः संसारमुक्त पुरुष को न तो कभी हर्ष होता है, न विषाद। वह शान्तमना सदा विदेह (मुक्त) की भाँति शोभता है।

हिंदी छंद

नहिं मुक्त जीवन को कभी, हो हर्ष और विषादता।
शीतल हृदय मन शान्त नित, निर्देह सा वह भासता।।

---

23 कुत्रापि न जिहासाऽस्ति आशा वाऽपि न कुत्रचित्।
आत्मारामस्य धीरस्य शीतलाच्छतरात्मनः।।

अनुवादः आत्मा में रमण करने वाले और शीतल तथा निर्मल चित्त वाले धीर पुरुष की न कहीं त्याग की इच्छा है, न कहीं ग्रहण की आशा है।

हिंदी छंद

नहिं त्याग की इच्छा तथा आशा कहीं कुछ भी नहीं।
अति धीर आत्माराम शीतल स्वच्छ चित्त को हो कहीं।।

24 प्रकृत्या शून्य चित्तस्य कुर्वतोऽस्य यदृच्छया।
प्राकृतस्येव धीरस्य न मानो नावमानता।।

अनुवादः स्वाभाविक रूप से जो शून्यचित्त है और सहजरूप से जो कर्म करता है, उस धीर पुरुष को सामान्यजन की तरह, न मान है और न अपमान है।

हिंदी छंद | प्रारब्धवश या प्रकृतिवश जो अज्ञवत् करता रहे।
इस शून्य चित्त सुधीर को, अपमान मान न कुछ रहे।।

---

25 कृतं देहेन कर्मेदं न मया शुद्धरूपिणा।
इति चिन्तानुरोधी यः कुर्वन्नपि करोति न।।

अनुवादः यह कर्म शरीर से किया गया है, मुझ शुद्ध स्वरूप द्वारा नहीं। ऐसी चिन्तना का जो अनुगमन करता है वह कर्म करता हुआ भी नहीं करता है।

हिंदी छंद | सब कर्म होते देह से, मुझ शुद्ध चेतन से नहीं।
ऐसा विचारे जो सतत, करता हुआ करता नहीं।।

---

26 अतद्वादीव कुरुते न भवेदपि वालिशः।
जीवन्मुक्तः सुखी श्रीमान् संसारन्नपि शोभते।।

अनुवादः जीवन्मुक्त, उस सामान्यजन की तरह कर्म करता है, जो कहता कुछ और है और करता कुछ और है तो वह मूढ़ नहीं होता है और वह सुखी श्रीमान् संसार में रहकर भी शोभायमान होता है।

हिंदी छंद | नहिं कर्म स्वीकारे तदपि करता रहे नहि मूढ़ भी।
श्रीमान् जीवन्मुक्त व्यवहारी सुखी सो है तभी।।

27 नानाविचारसुश्रान्तो धीरो विश्रान्तिमागतः।
न कल्पते न जानाति न श्रृणोति न पश्यति।।

अनुवादः जो धीर पुरुष अनेक प्रकार के विचारों से थककर शान्ति को उपलब्ध होता है वह न कल्पना करता है, न जानता है, न सुनता है, न देखता है।

हिंदी छंद

नाना विचारों से थका, निजरूप में विश्रान्त वह।
ज्ञानी न करता कल्पना, जाने सुने देखे न वह।।

---

28 असमाधेरविक्षेपान्न मुमुक्षुर्न चेतरः।
निश्चित्य कल्पितं पश्यन् ब्रह्मैवास्ते महाशयः।।

अनुवादः महाशय पुरुष विक्षेप–रहित और समाधि–रहित होने के कारण न मुमुक्षु है, न गैर–मुमुक्षु होता है। वह निश्चियपूर्वक संसार को कल्पित देखता ब्रह्मवत् रहता है।

हिंदी छंद

विक्षिप्त सुसमाहित न बुध, नहि अतः बद्ध मुमुक्षु भी।
कल्पित हुआ जग देखता, वह रहे ब्रह्म स्वरूप ही।।

---

29 यस्यान्तः स्यादहंकारो न करोति करोति सः।
निरहंकार धीरेण न किञ्चिदकृतं कृतम्।।

अनुवादः जिसके अन्तःकरण में अहंकार है वह कर्म नहीं करते हुए भी कर्म करता है और अहंकार–रहित धीर पुरुष कर्म करते हुए भी नहीं करता है।

हिंदी छंद

जिसके अहं मन में रहे, करता नहीं पर वह करे।
ज्ञानी अहं से रहित, कर्म अकर्म दोनों से परे।।

30 नोद्विग्नं न च संतुष्टमकर्तृस्पन्दवर्जितम्।
निराशं गतसंदेहं चित्तं मुक्तस्य राजते।।

अनुवादः मुक्तपुरुष का उद्वेग–रहित, सन्तोष–रहित, कर्त्तव्य रहित, स्पन्द रहित, आशा–रहित, सन्देह–रहित चित्त ही शोभायमान है।

हिंदी छंद

उद्विग्न नहिं सन्तुष्ट नहिं, कर्तृत्व का संकल्प नहिं।
आशा रहित है सोहता, मन मुक्त का सन्दिग्ध नहिं।।

---

31 निर्ध्यातुं चेष्टितुं वापि यच्चित्तं प्रवर्तते।
निर्निमित्तमिदं किन्तु निर्ध्यायति विचेष्टते।।

अनुवादः मुक्त पुरुष का चित्त ध्यान या चेष्टा में प्रवृत्त नहीं होता है। लेकिन वह निमित्त या हेतु के बिना ध्यान करता है और कर्म करता है।

हिंदी छंद

निष्क्रिय कि सक्रिय भाव को, जो चित्त हो न प्रवृत्त है।
वह ही बिना संकल्प के, निश्चेष्ट चेष्टायुक्त है।।

---

32 तत्त्वं यथार्थमाकर्ण्य मन्दः प्राप्नोति मूढ़ताम्।
अथवाऽऽयाति संकोचममूढः कोऽपि मूढ़वत्।।

अनुवादः मन्द बुद्धि यथार्थत्व को सुनकर मूढ़ता को ही प्राप्त होता है। लेकिन कोई ज्ञानी मूढ़वत् होकर संकोच या समाधि को प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

मतिमन्द तत्त्व यथार्थ सुनकर, मूढ़ता को प्राप्त हो।
अथवा समाधी साधता, कोई मूढ़वत् ज्ञानी अहो।।

33 एकाग्रता निरोधो वा मूढ़ैरभ्यस्ते भृशम्।
धीराः कृत्यं न पश्यन्ति सुप्तवत् स्वपदे स्थितः।।

अनुवादः अज्ञानी चित्त की एकाग्रता अथवा निरोध का बहुत अभ्यास करता है लेकिन धीर पुरुष सोये हुए व्यक्ति की तरह अपने स्वभाव में स्थिर रहकर कुछ करने योग्य नहीं देखता है।

हिंदी छंद

एकाग्रवृत्ति निरोध का, अति यत्न करते मूढ़ हैं।
बुध कुछ न लखते सुप्तवत्, निजरूप में आरूढ़ हैं।।

---

34 अप्रयत्नात्प्रयत्नाद्वा मूढ़ो नाप्नोति निर्वृत्तिम्।
तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञो भवति निर्वृत्तः।।

अनुवादः अज्ञानी पुरुष प्रयत्न अथवा अप्रयत्न से निर्वृत्ति को प्राप्त नहीं होता है जबकि ज्ञानी पुरुष केवल तत्त्व को निश्चयपूर्वक जानकर ही निर्वृत्त हो जाता है।

हिंदी छंद

अति यत्न से या यत्न बिन, नहिं मूढ़ उत्तम सुख लहे।
पर तत्त्व निश्चय मात्र से, विद्वान् सुख शान्ति गहे।।

---

35 शुद्धं बुद्धं प्रियं पूर्णं निष्प्रपञ्चं निरामयम्।
आत्मानं तं न जानन्ति तत्राभ्यासपराजनाः।।

अनुवादः इस संसार में अभ्यास परायण पुरुष उस आत्मा को नहीं जान पाते जो शुद्ध, बुद्ध, प्रिय, प्रपंच–रहित और दुःख–रहित है।

हिंदी छंद

जो शुद्ध बुद्ध प्रपञ्च बिनु, प्रिय है निरामय सब कहीं।
अभ्यास में तत्पर मनुज, उस आत्म को जाने नहीं।।

36 नाप्नोति कर्मणा मोक्षं विमूढोऽभ्यासरूपिणा।
धन्यो विज्ञानमात्रेण मुक्तस्तिष्ठत्यविक्रियः।।

अनुवादः अज्ञानी पुरुष अभ्यासरूपी कर्म से मोक्ष को नहीं प्राप्त होता है। जबकि क्रियारहित ज्ञानी पुरुष केवल ज्ञान के द्वारा मुक्त हुआ स्थिर रहता है।

हिंदी छंद | अभ्यासरूपी कर्म से, नहिं मोक्ष अज्ञानी लहें।
वे धन्य बस विज्ञान से ही, मुक्त जो निष्क्रिय रहें।।

---

37 मूढो नाप्नोति तद्ब्रह्म यतो भवितुमिच्छति।
अनिच्छन्नपि धीरो हि परब्रह्म स्वरूपभाक्।।

अनुवादः अज्ञानी जैसे ब्रह्म होने की इच्छा करता है वैसे ही ब्रह्म नहीं हो पाता है और धीर पुरुष नहीं चाहता हुआ भी निश्चित ही परब्रह्म स्वरूप को भजने वाला होता है।

हिंदी छंद | नहिं ब्रह्म पाता मूढ़, क्योंकि ब्रह्म वह होना चहे।
इच्छा बिना भी धीर ज्ञानी, ब्रह्म रूप सदा रहे।।

---

38 निराधारा ग्रहव्यग्रा मूढाः संसारपोषकाः।
एतस्यानर्थमूलस्य मूलच्छेदः कृतो बुधैः।।

अनुवादः इस आधार–रहित, दुराग्रह–युक्त संसार का पोषक अज्ञानी पुरुष ही है। इस अनर्थ के मूल संसार का मूलाच्छेद ज्ञानियों द्वारा किया गया है।

हिंदी छंद | आधार बिनु सुदुराग्रही, संसार पोषक मूढ़ जन।
ज्ञानी जगत् जड़ काटते हैं, जो अनर्थों की सघन।।

39

न शान्तिं लभते मूढ़ो यतः शमितुमिच्छति।
धीरस्तत्त्वं विनिश्चित्य सर्वदा शान्त मानसः

अनुवादः अज्ञानी जैसे शान्त होने की इच्छा करता है वैसे ही वह शान्ति को नहीं प्राप्त होता है किन्तु धीर पुरुष तत्त्व को जानकर सदैव शान्त मन वाला है।

हिंदी छंद

नहिं शान्ति पाते मूढ़, क्योंकि शान्त वे होना चहें।
करके सुनिश्चित तत्त्व बुध, नित शान्त मानस ही रहें।।

40

क्वात्मनो दर्शनं तस्य यद्दृष्टमवलम्बते।
धीरास्तं तं न पश्यन्ति पश्यन्त्यात्मानमव्ययम्।।

अनुवादः उसको आत्मा का दर्शन कहाँ है जो दृश्य का अवलम्बन करता है?धीर पुरुष दृष्य को नहीं देखते हैं। वे अविनाशी आत्मा को देखते हैं।

हिंदी छंद

जो दृश्य पर ही टिका रहा, कहाँ आत्म दर्शन है उसे।
ज्ञानी न उसको देखते, अविनाशि आत्मा ही दिसे।।

41

क्व निरोधो विमूढस्य यो निर्बन्धं करोति वै।
स्वारामस्यैव धीरस्य सर्वदाऽसावकृत्रिमः।।

अनुवादः जो हठपूर्वक चित्त का निरोध करता है उस अज्ञानी को कहाँ चित्त का निरोध है? स्वयं में रमण करने वाले धीर पुरुष के लिए यह चित्त का निरोध स्वाभाविक है।

हिंदी छंद

जो अज्ञवृत्ति निरोध को, हठ से करे वह हो कहाँ।
वह धीर आत्माराम को, सतत सहज होता यहाँ।।

42

भावस्य भावकः कश्चिन्न किञ्चिद्भावकोऽपरः।
उभयाऽभावकः कश्चिदेवमेव निराकुलः।।

अनुभवः कोई भाव को मानने वाला है और कोई 'कुछ भी नहीं है' ऐसा मानने वाला है। वैसे ही कोई दोनों को मानने वाला है। वैसे ही कोई दोनों को नहीं मानने वाला है और वही स्वस्थचित्त है।

हिंदी छंद

है भाव भावक कोई नर, कोई अभाव निमग्न है।
पर कोई दोनों का अभावक, मुनि निराकुल भिन्न है।।

43

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्ति कुबुद्धयः।
न तु जानन्ति संमोहाद्यावज्जीवमनिर्वृताः।।

अनुवादः कुबुद्धि पुरुष शुद्ध अद्वैत आत्मा की भावना करते हैं लेकिन मोहवश उसे नहीं जानते हैं इसलिए जीवनभर सुखरहित रहते हैं।

हिंदी छंद

अद्वैत शुद्ध निजात्म की, करते अबुध बस भावना।
नहिं जानते पर मोह से, जीवन अशान्तिमय बना।।

44

मुमुक्षोर्बुद्धिरालम्बमन्तरेण न विद्यते।
निरालम्बैव निष्कामा बुद्धिर्मुक्तस्य सर्वदा।।

अनुवादः मुमुक्षु पुरुष की बुद्धि आलम्बन के बिना नहीं रहती। मुक्त पुरुष की बुद्धि सदा निष्काम और निरालम्ब रहती है।

हिंदी छंद

यह बाह्य बुद्धि मुमुक्षु की, आश्रय बिना रहती नहीं।
पर मुक्त की आश्रय रहित, निष्काम बुद्धि सदैव ही।।

45 विषयद्वीपिनो वीक्ष्य चकिताः शरणार्थिनः।
विशन्ति झटिति क्रोडन्निरोधैकाग्र्यसिद्धये।।

अनुवादः विषयरूपी बाघ को देखकर भयभीत हुआ मनुष्य शरण की खोज में शीघ्र ही चित्त के निरोध और एकाग्रता की सिद्धि के लिए पहाड़ की गुफा में प्रवेश करता है।

हिंदी छंद

लख विषय रूपी गजों को, भयभीत रक्षा के लिये।
चित्त कन्दरा में झट अबुध, घुसते समाधी के लिये।।

---

46 निर्वासनं हरिं दृष्ट्वा तूष्णीं विषयदन्तिनः।
पलायन्ते न शक्तास्ते सेवन्ते कृतचाटवः।।

अनुवादः वासना–रहित पुरुष–सिंह को देखकर विषयरूपी हाथी चुपचाप भाग जाते हैं या वे असमर्थ होकर चाटुकार की तरह उसकी सेवा करने लगते हैं।

हिंदी छंद

निर्वासनिक ज्ञानी मुनी, हरि को विषय गज देखकर।
वे भागते असमर्थ पर, सेवा कर प्रिय बाद करें।।

---

47 न मुक्तिकारिकान्धत्ते निःशंको युक्तमानसः।
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम्।।

अनुवादः शंकारहित और मुक्त मन वाला पुरुष मुक्तिकारी योग (यम, नियमादि) को आग्रह के साथ नहीं ग्रहण करता है लेकिन वह देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ सुखपूर्वक रहता है।

हिंदी छंद

नहिं मुक्ति साध साधता, निशंक निश्चल मन रहे।
सुनता समझता देखता, खाता हुआ सुख से रहे।।

48 वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिर्निराकुलः।
नैवाचारमनाचारमौदास्यं वा प्रपश्यति।।

अनुवादः यथार्थ ज्ञान के सुनने मात्र से शुद्ध बुद्धि और स्वस्थ चित्त हुआ पुरुष न आचार को, न अनाचार को, न उदासीन को देखता है।

हिंदी छंद

सद्वस्तु के बस श्रवण से ही, शुद्ध बुद्धि स्वस्थ मन।
आचार हीनाचार औदासीन्य नहिं लखता सुजन।।

---

49 यदा यत्कर्तुमायाति तदा तत्कुरुते ऋजुः।
शुभं वाप्यशुभं वापि तस्य चेष्टा हि बालवत्।।

अनुवादः धीर पुरुष जब कुछ शुभ या अशुभ करने को आ पड़ता है तो उसे सहजता के साथ करता है क्योंकि उसका व्यवहार बालवत् है।

हिंदी छंद

जो कुछ शुभाशुभ कार्य आया, समय पर करता वही।
आग्रह रहित ज्ञानी पुरुष की, बालवत् चेष्टा सही।।

---

50 स्वातन्त्र्यात्सुखमाप्नोति स्वातन्त्र्याल्लभते परम्।
स्वातन्त्र्यान्निवृत्तिं गच्छेत् स्वातन्त्र्यात्परमं पदम्।।

अनुवादः धीर पुरुष स्वतन्त्रता से सुख को प्राप्त होता है, स्वतन्त्रता से परम का प्राप्त होता है, स्वतन्त्रता से नित्यसुख को प्राप्त होता है और स्वतन्त्रता से परमपद हो प्राप्त होता है।

हिंदी छंद

स्वाधीनता से सुख लहे, स्वाधीनता से ज्ञान भी।
स्वाधीनता से परमपद, स्वाधीनता से शान्ति भी।।

51 अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा।
तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्तवृत्तयः।।

अनुवादः जब मनुष्य अपनी आत्मा के अकर्त्तापन और अभोक्तापन को मानता है तब उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का नाश हो जाता है।

हिंदी छंद

कर्तापना भोक्तापना, निज आत्म में माने न जब।
सम्पूर्ण चित की वृत्तियाँ, ये क्षीण हो जाती हैं तब।।

---

52 उच्छृङ्खलाप्याकृतिका स्थितिर्धीरस्य राजते।
न तु संस्पृहचित्तस्य शान्तिर्मूढस्य कृत्रिमा।।

अनुवादः धीर पुरुष की स्वाभाविक उच्छृंखल स्थिति भी शोभती है लेकिन स्पृहायुक्त चित्त वाले मूढ़ की बनावटी शान्ति भी नहीं शोभती।

हिंदी छंद

शान्ति रहित भी धीर की, सहजा अवस्था शोभती।
पर संस्पृही मन अज्ञ की, शान्ति न कृत्रिम सोहती।।

---

53 विलसन्ति महाभोगैर्विशन्ति गिरिगह्वरान्।
निरस्तकल्पना धीरा अबद्धा मुक्त बुद्धयः।।

अनुवादः कल्पना–रहित, बन्धन–रहित और मुक्त बुद्धि वाले धीर पुरुष कभी बड़े–बड़े भोगों के साथ क्रीड़ा करते हैं, और कभी पहाड़ की कन्दराओं में प्रवेश करते हैं।

हिंदी छंद

बहुभोग से संयुक्त या, गिरि कन्दराओं में भरे।
बन्धन रहित स्वच्छन्द मति, बुध कल्पनाओं से परे।।

54 श्रोत्रियं देवतां तीर्थंगमनां भूपतिं प्रियम्।
दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य न कापि हृदि वासना।।

अनुवादः धीर पुरुष के हृदय में पण्डित, देवता और तीर्थ का पूजन करके तथा स्त्री, राजा और प्रियजन को देखकर कोई भी वासना नहीं होती।

हिंदी छंद

वेदज्ञ–देव–सुतीर्थ को, ज्ञानी यथावत् पूजकर।
हिय में न कुछ भी वासना, नृप नारि प्रिय को देखकर।।

---

55 भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैश्च दौहित्रैश्चापि गोत्रजैः।
विहस्य धिक्कृतो योगी न याति विकृतिं मनाक्।।

अनुवादः योगी नौकरों से, पुत्रों से, पत्नियों से, दोहित्रों और बान्धवों द्वारा हँसकर धिक्कारे जाने पर भी विकार को प्राप्त नहीं होता है।

हिंदी छंद

सेवक सुतादिक नारि से, प्रियगण तथा परिवार से।
धिक् धिक् हुआ योगी, न कुछ होता विकृत उपहास से।।

---

56 संतुष्टोऽपि न सन्तुष्टः खिन्नोऽपि न च खिद्यते।
तस्याश्चर्यदशां तां तां तादृशा एव जानते।।

अनुवादः धीर पुरुष सन्तुष्ट होकर भी सन्तुष्ट नहीं होता है और दुःखी होकर भी दुःखी नहीं होता है। उसकी इस आश्चर्यमय दशा को वैसे ही ज्ञानी जानते हैं।

हिंदी छंद

सन्तुष्ट सा सन्तुष्ट नहिं, है खिन्न पर नहिं खिन्न है।
आश्चर्य ज्ञानी की दशा, जाने नहीं जो भिन्न है।।

57 कर्त्तव्यतैव संसारो न तां पश्यन्ति सूरयः।
शून्याकारा निराकारा निर्विकारा निरामयाः।।

अनुवादः कर्तव्य ही संसार है शून्याकार, निराकार, निर्विकार (विकाररहित) और निरामय (दुःखरहित) ज्ञानी नहीं देखते हैं।

हिंदी छंद

कर्तव्यता ही है जगत् उसको न लखते विज्ञजन।
वे निर्विकारी निराकारी हैं, निरामय शून्य मन।।

---

58 अकुर्वन्नपि संक्षोभाद्व्यग्रः सर्वत्र मूढधीः।
कुर्वन्नपि तु कृत्यानि कुशलो हि निराकुलः।।

अनुवादः अज्ञानी कर्मों को नहीं करता हुआ भी सर्वत्र विक्षोभ (संकल्प–विकल्प) के कारण व्याकुल रहता है और ज्ञानी सब कर्मों को करता हुआ भी शान्तचित्त वाला ही होता है।

हिंदी छंद

करता न कुछ भी मन्दधी, पर क्षोभ से रहता विकल।
करता हुआ भी कर्म सब, ज्ञानी निराकुल है कुशल।।

---

59 सुखमास्ते सुखंशेते सुखमायाति याति च।
सुखं वक्ति सुखं भुङ्क्ते व्यवहारेऽपि शान्तधीः।।

अनुवादः शान्त बुद्धि वाला ज्ञानी व्यवहार में भी सुखपूर्वक बैठता है, सुखपूर्वक आता है और मर जाता है, सुखपूर्वक बोलता है और सुखपूर्वक भोजन करता है।

हिंदी छंद

सुख से रहे सुख में कहे, गमनागमन सुख से करे।
सोता सुखी खाता सुखी, व्यवहार में बुध ना डरे।।

60 स्वभावाद्यस्य नैवार्तिर्लोक वद्व्यवहारिणः।
महाह्रद इवाक्षोभ्यो गतक्लेशः सुशोभते।।

अनुवादः जो ज्ञानी स्वभाव से व्यवहार में भी सामान्यजन की तरह नहीं व्यवहार करता और महासरोवर की तरह क्लेशरहित है, वही शोभता है।

हिंदी छंद

प्राकृतिक जिस व्यवाहारि को, नहिं लोकसम पीड़ा रहे।
अक्षुभित क्लेशों से रहित, बुध सिन्धुवत् शोभित रहे।।

---

61 निवृत्तिरपि मूढस्य प्रवृत्तिरूपजायते।
प्रवृत्तिरपि धीरस्य निवृत्तिर्फलदायिनी।।

अनुवादः मूर्ख मनुष्य की निवृत्ति भी प्रवृत्तिरूप हो जाती है। किन्तु धीर पुरुष की प्रवृत्ति भी निवृत्ति के समान फल देती है।

हिंदी छंद

इस अज्ञ की विनिवृत्ति भी, होती प्रवृत्ति रूप ही।
विद्वान की सुप्रवृत्ति भी, फलती निवृत्ति स्वरूप ही।।

---

62 परिग्रहेषु वैराग्यं प्रायो मूढस्य दृश्यते।
देहे विगलिताशस्य क्व रागः क्व विरागता।।

अनुवादः मूढ़ पुरुष का वैराग्य परिग्रह से देखा जाता है। लेकिन देह में गलित हो गई है आशा जिसकी, ऐसे ज्ञानी को कहाँ राग है? कहाँ वैराग्य?

हिंदी छंद

गेहादि में वैराग्य प्रायः, अबुध का दिखता यहाँ।
देहाभिमान निवृत्त को, वैराग राग रहे कहाँ।।

63 भावनाभावनासक्त दृष्टिर्मूढस्य सर्वदा।
भाव्यभावनया सा तु स्वस्थस्यादृष्टिरूपिणी।।

अनुवादः मूर्ख पुरुष की दृष्टि सदा भावना और अभावना में लगी रहती है। जबकि स्वस्थ पुरुष (ज्ञानी) को दृष्टि भावना–अभावना से युक्त रहकर भी उनके प्रति अदृष्टि रूप ही रहती है।

हिंदी छंद

नित भावना निर्भावना में, अज्ञ दृष्टि लगी रहे।
यह दृश्य चिन्तन युक्त भी, बुध की न दृष्टि कहीं रहे।।

---

64 सर्वारम्भेषु निष्कामो यश्चरेद्बालवन्मुनिः।
न लेपस्तस्य शुद्धस्य क्रियमाणोऽपि कर्मणि।।

अनुवादः जो मुनि बालक के समान व्यवहार करता हे एवं कामना–रहित रूप से सभी कर्मों का आरम्भ करता है, उस शुद्ध स्वरूप को क्रियमाण कर्म (किये हुए कर्म) भी लिप्त नहीं करते हैं।

हिंदी छंद

जो बालसम सब कर्म में, मुनि कामना से है रहित।
वह कर्म करते हुए भी, है शुद्ध बुध निर्लेप नित।।

---

65 स एव धन्य आत्मज्ञः सर्व भावेषु यः समः।
पश्चञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्निस्पर्षमानसाः।।

अनुवादः वही आत्मज्ञानी धन्य है जो मन का निस्तरण कर गया है और जो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ सब भावों में एकरस है।

हिंदी छंद

आत्मज्ञ ही वह धन्य है, सब भाव में जो सम रहे।
हैं सब प्रवर्तित इन्द्रियाँ, तृष्णा न कुछ मन में रहे।।

66 क्व संसारः क्व चाभासः क्व साध्यं क्व च साधनम्।
आकाशस्येव धीरस्य निर्विकल्पस्य सर्वदा।।

अनुवादः सदैव आकाश के समान निर्विकल्प ज्ञानी को कहाँ संसार है? कहाँ आभास है? कहाँ साध्य है? कहाँ साधन है?

हिंदी छंद

नित निर्विकल्पक व्योम सम, उस धीर ज्ञानी को कहाँ।
संसार है, भासे कहाँ अरु साध्य साधन भी कहाँ।।

---

67 स जयत्यर्थसंन्यासी पूर्णस्वरसविग्रहः।
अकृत्रिमोऽनवच्छिन्ने समाधिर्यस्य वर्तते।।

अनुवादः वहीं संन्यासी जय को प्राप्त होता है जो पूर्णानन्दस्वरूप है तथा जिसकी समाधि (अकृत्रिम) अवछिन्नरूप से (निरन्तर) विद्यमान रहती है।

हिंदी छंद

वह कर्म फल त्यागी जयति, आनन्द विग्रह पूर्ण नर।
निज रूप में जिसकी समाधि, सहज ही रहती निडर।।

---

68 बहुनात्र किमुक्तेन ज्ञाततत्त्वो महाशयः।
भोगमोक्षनिराकाङ्क्षी सदा सर्वत्र नीरसः।।

अनुवादः यहाँ बहुत कहने से क्या प्रयोजन है? तत्त्व—ज्ञानी महाशय भोग और मोक्ष दोनों में निराकांक्षी, सदा और सर्वत्र रागरहित रहता है।

हिंदी छंद

क्या बहुत कहने से यहाँ, स्थितप्रज्ञ ज्ञानी बन्ध नित।
नीराग वे सर्वत्र भोगुरु, मोक्ष की इच्छा रहित।।

69 महदादि जगद्द्वैतं नाममात्रविजृम्भितम्।
विहाय शुद्धबोधस्य किं कृत्यमवशिष्यते।।

अनुवादः महत्तत्व आदि जो द्वैत–जगत् है वह नाम मात्र को ही भिन्न है। उसका त्यागकर देने के बाद शुद्ध बोध वाले का कौन–सा कार्य शेष रह जाता है।

हिंदी छंद | महदादि–प्रकृति विकार, केवल नाममय इस द्वैत को।
त्यागे सिवा कर्तव्य क्या है, शुद्ध बुद्ध–स्वरूप को।।

---

70 भ्रमभूतमिदं सर्वं किञ्चिन्नास्तीति निश्चयी।
अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभावेनैव शाम्यति।।

अनुवादः यह समस्त भ्रमरूप जगत्प्रपंच कुछ नहीं है, ऐसा निश्चयपूर्वक जानकर अलक्ष्य (आत्मा) की स्फुरण वाला शुद्ध पुरुष स्वभाव से ही शान्त होता है।

हिंदी छंद | भ्रम रूप है यह सर्व जग, कुछ है नहीं निश्चय यही।
आत्मज्ञ शुद्ध स्वरूप स्वाभाविक हुआ है शान्त ही।।

---

71 शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावमपश्यतः।
क्व विधिः क्व च वैराग्यं क्व त्यागः क्व शमोऽपि वा।।

अनुवादः दृश्यभाव को नहीं देखते हुए शुद्ध स्फुरणरूप (आत्मा) का अनुभव करने वाले (ज्ञानी) को कहाँ विधि है? और कहाँ वैराग्य है। कहाँ त्याग है? और कहाँ शान्ति है?

हिंदी छंद | वह शुद्ध चेतन रूप बुध, जो दृश्य भाव न देखता।
उसको कहाँ विधि त्याग कहँ, वैराग्य शम क्या लेखता।।

72 स्फुरतोऽनन्तरूपेण प्रकृतिं च न पश्यतः।
क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः क्व हर्षः क्व विषादता।।

अनुवादः और अनन्त रूपों में स्फुरित प्रकृति (माया) को नहीं देखते हुए ज्ञानी को कहाँ बन्ध है? और कहाँ मोक्ष है? कहाँ हर्ष है? कहाँ शोक है?

हिंदी छंद

भासे अनन्त स्वरूप से, अरु प्रकृति जो न लखे सही।
बन्धन उसे कहँ मोक्ष कहँ, कहँ हर्ष और विषाद ही।।

---

73 बुद्धिपर्यन्तसंसारे मायामात्रं विवर्तते।
निर्ममो निरहङ्कारो निष्कामः शोभते बुधः।।

अनुवादः बुद्धिपर्यन्त संसार में जहाँ माया ही माया भासती है वहाँ ममतारहित, अहंकाररहित और कामनारहित ज्ञानी ही शोभता है।

हिंदी छंद

है दृष्टि जब तक सृष्टि भी, मायिक जगत् सब भासता।
ममता अहंता रहित बुध, निष्काम इससे राजता।।

---

74 अक्षयं गतसंतापमात्मानं पश्यतो मुनेः।
क्व विद्या क्व च वा विश्वं क्व देहोऽहं ममेति वा।।

अनुवादः अविनाशी और सन्तापरहित आत्मा को देखने वाले मुनि को कहाँ विद्या? और कहाँ विश्व (अविद्या)? कहाँ देह? और कहाँ अहंता ममता है?

हिंदी छंद

अक्लेश, अक्षय, आत्मा को लखते हुए मुनि को यहाँ।
विद्या कहाँ! कहँ! विश्व है कहँ! देह मैं मेरा कहाँ!

75 निरोधादीनि कर्माणि जहाति जडधीर्यदि।
मनोरथान्प्रलापांश्च कर्तुमाप्नोति तत्क्षणात्।।

अनुवादः यदि जड़–बुद्धि मनुष्य निरोधादि कर्मों को छोड़ता भी है तो वह तत्क्षण मनोरथों और प्रलापों को पूरा करने में प्रवृत्त हो जाता है।

हिंदी छंद

अभ्यास चित्त निरोध आदिक, छोड़ता जड़धी जभी।
अगणित मनोरथ अरु प्रलापों को लगे करने तभी।।

---

76 मन्दः श्रुत्वापि तद्वस्तु न जहाति विमूढ़ताम्।
निर्विकल्पा बहिर्यत्नादन्तर्विषयलालसः।।

अनुवादः मन्द बुद्धि उस तत्व को सुनकर भी मूढ़ता को नहीं छोड़ता है। वह बाह्य प्रयत्न में निर्विकल्प होकर मन में विषयों की लालसा वाला होता है।

हिंदी छंद

मतिमन्द सुनकर तत्त्व भी, तजता न मन की मूढ़ता।
बाहर दिखाता शान्त सा, अन्दर विषय रस ढूँढता।।

---

77 ज्ञानाद्गलितकर्मा यो लोकदृष्ट्यापि कर्मकृत्।
नाप्नोऽत्यवसरं कर्तुं वक्तुमेव न किञ्चन।।

अनुवादः ज्ञान से नष्ट हुआ है कर्म जिसका, ऐसा ज्ञानी लोक–दृष्टि में कर्म करने वाला भी है लेकिन वह न कुछ करने का अवसर पाता है, न कहने का ही।

हिंदी छंद

हैं ज्ञान से विच्छिन्न जिसके कर्म वह जन दृष्टि से।
है कर्मकारी, पर न कुछ करने, न कहने का इसे।।

78 क्व तमः क्व प्रकाशो वा हानं क्व च न किञ्चन।
निर्विकारस्य धीरस्य निरातंकस्य सर्वदा।।

अनुवादः सर्वदा निर्भय और निर्विकार धीर पुरुष को कहाँ अन्धकार? कहाँ प्रकाश है? और कहाँ त्याग है?कहीं कुछ भी नहीं है।

हिंदी छंद

इस निर्विकारी, नित्य, निर्भय, धीर ज्ञानी को यहाँ।
कहँ अन्धकार प्रकाश कहँ अरु त्याग कुछ ना कुछ कहाँ।।

---

79 क्व धैर्य क्व विवेकित्वं कव निरातंकताऽपि वा।
अनिर्वाच्यस्वभावस्य निः स्वभावस्ययोऽगिनः।।

अनुवादः अनिर्वचनीच स्वभाव वाले स्वभावरहित योगी को कहाँ धीरता है? कहाँ विवेकिता? अथवा कहाँ निर्भयता है?

हिंदी छंद

है अनिर्वाच्य स्वभाव अथवा निःस्वभाव सुयोगि को।
धीरज कहाँ क्या विवेकता, निर्भयपना क्या योगि को।।

---

80 न स्वर्गो नैव नरको जीवन्मुक्तिर्न चैव हि।
बहुनात्र किमुक्तेन योगदृष्ट्या न किञ्चन।।

अनुवादः योगी को न स्वर्ग है, न नरक है, न जीवन्मुक्ति ही है। इसमें बहुत कहने से क्या प्रयोजन; योग की दृष्टि से कुछ भी नहीं है।

हिंदी छंद

नहिं स्वर्ग है नहिं नरक, जीवन्मुक्ति भी बुध को न कुछ।
क्या बहुत कहने से यहाँ, है ज्ञान दृष्टि से न कुछ।।

81 नैव प्रार्थयते लाभं नालाभेनानुशोचति।
धीरस्य शीतलं चित्तममृतेनैव पूरितम्।।

अनुवादः धीर पुरुष का चित्त अमृत से पूरित हुआ शीतल है। इसलिए न वह लाभ के लिए प्रार्थना करता है और न हानि के लिए कभी चिन्ता करता है।

हिंदी छंद

चाहे न कोई लाभ, ज्ञानी हानि से चिन्तित न है।
शीतल हृदय मन धीर का, मानो अमृत से पूर्ण है।।

---

82 न शान्तं स्तौति निष्कामौ न दुष्टमपि निन्दति।
समदुःखसुखस्तृप्तः किञ्चित्कृत्यं न पश्यति।।

अनुवादः निष्काम पुरुष (योगी) न तो शान्त पुरुष की प्रशंसा करता है, न दुष्ट को देखकर निन्दा करता है। वह सुख–दुःख को समान समझता हुआ तृप्त है। उसे करने को कुछ भी नहीं दीखता है।

हिंदी छंद

करता न संस्तुति शान्त की, अरु दुष्ट की निन्दा नहीं।
निष्काम वह सुख दुःख सम कुछ कृत्य तृप्त लखे नहीं।।

---

83 धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दिदृक्षति।
हर्षामर्षविनिर्मुक्तो न मृतो न च जीवति।।

अनुवादः धीर पुरुष न संसार के प्रति द्वेष करता है और न आत्मा को देखने की इच्छा करता है। हर्ष और शोक से मुक्त वह, न मरे हुए जैसा है और न जीवित जैसा।

हिंदी छंद

संसार से नहिं द्वेष, इच्छा आत्मदर्शन की नहीं।
करता सुधी निर्द्वन्द्व नित, वह मृतक नहिं जीवित नहीं।।

84 निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामो विषयेषु च।
निश्चिन्तः स्वशरीरेऽपिनिराशः शोभते बुधः।।

अनुवादः पुत्र, स्त्री आदि के प्रति स्नेह न रखता हुआ और विषयों में कामनारहित हुआ, अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं करता हुआ ज्ञानी पुरुष सभी आशाओं से मुक्त शोभा देता है।

हिंदी छंद
निःस्नेह पुत्र कलत्र में, निष्काम विषयों में न चित।
निश्चिन्त भी निज देह में, बुध शोभता आशा रहित।।

---

85 तुष्टिः सर्वत्र धीरस्य यथा पतितवर्तिनः।
स्वच्छन्दं चरतो देशान्यत्रास्तमितशायिनः।।

अनुवादः यथाप्राप्य से जीविका चलाने वाला, देशों में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाला, जहाँ सूर्यास्त हो वहाँ शयन करने वाला धीरपुरुष सर्वत्र सन्तुष्ट है।

हिंदी छंद
स्वच्छन्द विचरे देश में, सूर्यास्त जहँ सोता वहीं।
जेसा मिला वैसा किया, है तृप्त ज्ञानी सब कहीं।।

---

86 पततूदेतु वा देहो नास्य चिन्ता महात्मनः।
स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशेषसंसृते।।

अनुवादः जो निज स्वभावरूपी भूमि में विश्राम करता है और जिसे संसार विस्मृत हो गया है, उस महात्मा को इस बात की चिन्ता नहीं है कि देह रहे या जाये।

हिंदी छंद
यह तन गिरे या हो उदित, चिन्ता महात्मा को नहीं।
निजभाव भूमि थिर हुआ, संसार विस्मृत है यहीं।।

87 अकिञ्चनः कामचारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः।
असक्तः सर्वभावेषु केवलो रमते बुधः।।

अनुवादः अकिंचन, स्वच्छन्द विचरण करने वाला, द्वन्द्वरहित, संशयरहित, आसक्तिरहित और अकेला बुद्ध पुरुष ही सब भावों में रमण करता है।

हिंदी छंद

निस्संग इच्छाचारि नित, निर्द्वन्द्वनिःसंशय रहे।
बुध सर्व भावों में रमे, निर्लिप्त अविकारी रहे।।

---

88 निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
शुभिन्नहृदयग्रन्थिर्विनिर्धूत रजस्तमः।।

अनुवादः जो ममतारहित है उसके लिये मिट्टी, पत्थर और सोना समान है। जिसके हृदय की ग्रन्थि टूट गई है और जिसका रज, तम धुल गया वह धीर पुरुष ही शोभता है।

हिंदी छंद

पाषाण ढेला स्वर्ण में सम, धीर निर्मम राजता।
विच्छिन्न हृदय ग्रन्थि हुई, रज तम धुला मन भासता।।

---

89 सर्वत्रानवधानस्य न किञ्चिद्वासना हृदि।
मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलना केन जायते।।

अनुवादः जो सर्वत्र व्यवधान से मुक्त उदासीन है, और जिसके हृदय में कुछ भी वासना नहीं है। ऐसे तृप्त हुये मुक्तात्मा की किसके साथ तुलना हो सकती है।

हिंदी छंद

जो सर्व विषयों में विरत, हिय वासना जिसके न कुछ।
मुक्तात्म ऐसे तृप्त की, तुलना किसी से हो न कुछ।।

90 जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति।
ब्रुवन्नपि न च ब्रूते कोऽन्यो निर्वासनादृते।।

अनुवादः वासनारहित पुरुष के अतिरिक्त दूसरा कौन है जो जानता हुआ भी नहीं जानता है, देखता हुआ भी नहीं देखता है, बोलता हुआ भी नहीं बोलता है।

हिंदी छंद

बुध के सिवा को अन्य है, जो जानता जाने न पर।
लखता हुआ भी न लखे, कहता हुआ कहता न पर।।

---

91 भिक्षुर्वा भूपतिर्वापि यो निष्कामः स शोभते।
भावेषु गलिता यस्य शोभनाऽशोभना मतिः।।

अनुवादः जिसकी सब भावों में शोभन, अशोभन बुद्धि गलित हो गई है और जो निष्काम है, वही शोभायमान है, चाहे वह भिखारी हो या भूपति।

हिंदी छंद

निष्काम जन ही सोहता, हो भूपति या हो यती।
है सर्व भावों में गलित, जिसकी शुभाशुभ यह मती।।

---

92 क्व स्वाच्छन्द्यं क्व संकोचः क्व वा तत्त्वविनिश्चयः।
निर्व्याजार्जवभूतस्य चरितार्थस्य योगिनः।।

अनुवादः निष्कपट, सरल और यथार्थ चरित्र वाले योगी को कहाँ स्वच्छन्दता है? कहाँ संकोच है? और कहाँ तत्त्व का निश्चय है?

हिंदी छंद

निष्कपट, सरल स्वभाव अरु कृतकृत्य योगी को कहाँ।
स्वाधीनता संकोच कहँ, है तत्त्व निश्चय भी कहाँ।।

93 आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतार्तिना।
अन्तर्यदनुभूयते तत्कथं कस्य कथ्यते।।

अनुवादः आत्मा में विश्राम कर तृप्त हुये आशारहित और शोकरहित ज्ञानी के अन्तस् में जो अनुभव होता है उसे कैसे और किसको कहा जाये।

हिंदी छंद

निज रूप में स्थित तृप्त, आशा रहित दुःख अतीत से।
अनुभूति अन्तर होय जो, कैसे कहे किसको उसे।।

---

94 सुप्तोऽपि न सुषुप्तौ च स्वप्नेऽपि शयितो न च।
जागरेऽपि न जागर्ति धीरस्तृप्तः पदे पदे।।

अनुवादः जो सोया हुआ भी सुषुप्त नहीं है, और न स्वप्न में भी सोया हुआ है, जाग्रत में भी नहीं जागा हुआ है, वही धीर पुरुष क्षण–क्षण तृप्त है।

हिंदी छंद

सोता हुआ न सुषुप्ति में, नहिं स्वप्न में भी सोय है।
जागे न जाग्रत दशा में, वह तृप्त क्षण–क्षण होय है।।

---

95 ज्ञः सचिन्तोऽपि निश्चिन्तः सेन्द्रियोऽपि निरिन्द्रियः।
सबुद्धिरपि निर्बुद्धिः साहंकारोऽनहंकृतिः।।

अनुवादः ज्ञानी चिन्तायुक्त भी चिन्तारहित है, इन्द्रियों सहित भी इन्द्रियों रहित है, बुद्धिसहित भी बुद्धिरहित है तथा अहंकारयुक्त भी अहंकाररहित है।

हिंदी छंद

चिन्तित हुआ निश्चिन्त बुध, इन्द्रिय सहित भी है रहित।
वह बुद्धियुत निर्बुद्धि भी, है अहंयुत निर्अहम् ही नित।।

96 न सुखी न च वा दुःखी न विरक्तो न संगवान्।
न मुमुक्षुर्न वा मुक्तो न किञ्चिन्न चऽकिञ्चन।।

अनुवादः ज्ञानी न सुखी है, न दुःखी; न विरक्त है न संगयुक्त है; न मुमुक्षु है न मुक्त है; न किंचन है (कुछ है), न अकिंचन (कुछ नहीं)।

हिंदी छंद | ज्ञानी सुखी न दुःखी तथा न विरक्त ना अनुरक्त ही।
नहिं मुक्त और मुमुक्षु नहिं, किंचन अकिंचन कुछ नहीं।।

---

97 विक्षेपेऽपि न विक्षिप्तः समाधौ न समाधिमान्।
जाड्येऽपि न जडो धन्यः पाण्डित्येऽपि न पण्डितः।।

अनुवादः धन्य पुरुष विक्षेप में भी विक्षिप्त नहीं है, समाधि में भी समाधि वाला नहीं है, जड़ता में भी जड़ नहीं है, पाण्डित्य में भी पण्डित नहीं है।

हिंदी छंद | विक्षेप में विक्षिप्त नहिं, न समाधियुक्त समाधि में।
वह धीर जड़ता में अजड़, पण्डित न भी पाण्डित्य में।।

---

98 मुक्तो यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्यनिर्वृतः।
समः सर्वत्र वैतृष्णान्न स्मरत्यकृतं कृतम्।।

अनुवादः मुक्तपुरुष सब स्थितियों में स्वस्थ है, किये हुये और करने योग्य कर्म में तृप्त है, सर्वत्र समान है, तृष्णा के अभाव में किये और अनकिये कर्म को स्मरण नहीं करता है।

हिंदी छंद | ज्ञानी यथास्थिति स्वस्थ, कृत कर्तव्य में भी शान्त मन।
सर्वत्र सम तृष्णा रहित है, कृत अकृत का विस्मरण।।

99 न प्रीयते वन्द्यमानो निन्द्यमानो न कुप्यति।
नैवोद्विजति मरणे जीवने नाभिनन्दति।।

अनुवादः मुक्तपुरुष न स्तुति किये जाने पर प्रसनन होता हे, न निन्दित होने पर क्रुद्ध होता है। न मृत्यु में उद्विग्न होता है, न जीवन में हर्षित होता है।

हिंदी छंद

वन्दित हुआ प्रमुदित न वह, निन्दित हुआ ना कुपित ही।
व्याकुल न होता मरण में, नहिं हर्ष जीने में सही।।

---

100 न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशान्तधीः।
यथा तथा यत्र तत्र सम एवावतिष्ठते।।

अनुवादः शांत बुद्धि वाला पुरुष न लोगों से भरे नगर की ओर भागता है, न वन की ओर ही। वह सभी स्थिति और सभी स्थान में समभाव से ही स्थित रहता है।

हिंदी छंद

दौड़े न नगरों की दिशा, नहिं विपिन को स्थितप्रज्ञ ही।
वह जिस किसी भी भांति जहँ, कँहि सम अवस्थित है सही।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां शान्तिशतकं नामाष्टादशप्रकरणं समाप्तम्।)

19

उन्नीसवाँ प्रकरण

आत्म विश्रान्ति निरूपण

1 तत्त्वविज्ञानसंदंशमादाय हृदयोदरात्।
नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः कृतो मया।।

अनुवादः राजा जनक आत्मज्ञान से सन्तुष्ट होकर अपनी अभिव्यक्ति देते हैं– "मैंने आपके तत्त्वज्ञानरूपी संसी को लेकर हृदय और उदर से अनेक प्रकार के विचाररूपी बाण को निकाल दिया है।"

हिंदी छंद

इस भाँति जीवन्मुक्त की, सुनकर अवस्था जग गये।
पा शान्ति सम्यक् नृप जनक, निश्चय सुनाने लग गये।।
नाना विचारों के नुकीले, शल्य जो हिय में रहे।
विज्ञान सँडासी हाथ ले, उद्धार कर सुख पा रहे।।

2 क्व धर्मः क्व च वा कामः क्व चार्थः क्व विवेकता।
क्व द्वैतं क्व च वाऽद्वैतं स्वमहिम्निस्थितस्य मे।।

अनुवादः अपनी महिमा में स्थित मुझको कहाँ धर्म है? कहाँ काम है? कहाँ अर्थ है? कहाँ विवेकता है? कहाँ द्वैत है? और कहाँ अद्वैत है?

हिंदी छंद

कहँ धर्म अथवा काम है, कहँ अर्थ और विवेक कहँ।
नित निजी महिमा में अवस्थित, मुझे द्वैताद्वैत कहँ।।

3 क्व भूतं भविष्यद्वा वर्तमानमपि क्व वा।
क्व देशः क्व च वा नित्यं स्वमहिम्निस्थितस्य मे।।

अनुवादः नित्य अपनी महिमा में स्थित हुये मुझको कहाँ भूत है? कहाँ भविष्य है? अथवा कहाँ वर्तमान है?अथवा देश भी कहाँ है?

हिंदी छंद

कहँ भूत और भविष्य कहँ, है वर्तमान समय कहाँ।
निज निजी महिमा में अवस्थित, देश भी मुझको कहाँ।।

---

4 क्व चात्मा क्व च वाऽनात्मा क्व शुभं क्वाशुभं तथा।
क्व चिन्ता क्व च वाऽचिन्ता स्वहिम्निस्थितस्य मे।।

अनुवादः अपनी महिमा में स्थित हुये मुझको कहाँ आत्मा है? और कहाँ अनात्मा है? अथवा कहाँ अशुभ है? कहाँ चिन्ता है? अथवा कहाँ अचिन्ता है?

हिंदी छंद

कहँ आत्मा और अनात्म कहँ, शुभ अरु अशुभ मुझको कहाँ।
नित निजी महिमा में सुदृढ़, चिन्ता अचिन्ता भी कहाँ।।

---

5 क्व स्वप्नः क्व सुषुप्तिर्वा क्व च जागरणं तथा।
क्व तुरीयं भयं वापि स्वमहिम्निस्थितस्य मे।।

अनुवादः अपनी महिमा में स्थित हुये मुझको कहाँ स्वप्न? कहाँ सुषुप्ति? और कहाँ जाग्रत है? कहाँ तुरीय अवस्था का भय है?

हिंदी छंद

कहँ स्वप्न और सुषुप्ति भी है, है जागरण मुझको कहाँ।
निज निज महिमा में सुदृढ़ को भय तुरीय दशा कहाँ।।

6 क्व दूरं क्व समीपं वा बाह्यं क्वाभ्यन्तरं क्व वा।
क्व स्थूलं क्व च वा सूक्ष्मं स्वमहिम्निस्थितस्य मे।।

अनुवादः अपनी महिमा में स्थित मुझको कहाँ दूर है? कहाँ समीप? कहाँ बाह्य है? कहाँ अभ्यन्तर है? स्थूल कहाँ और सूक्ष्म कहाँ है?

हिंदी छंद

कहँ दूर और समीप कहँ, कहँ बाह्य आभ्यन्तर कहाँ।
नित निजी महिमा में सुदृढ़ को स्थूल सूक्ष्म कहाँ।।

---

7 क्व मृत्युर्जीवित वा क्व लोकाः क्वास्य क्व लौकिकम्।
क्व लयः क्व समाधिर्वा स्वमहिम्निस्थितस्य मे।।

अनुवादः अपनी महिमा में स्थित हुये मुझको कहाँ मृत्यु है?अथवा कहाँ जीवन? कहाँ लोक है व कहाँ इसका लौकिक व्यवहार? कहाँ लय है? और कहाँ समाधि?

हिंदी छंद

कहँ मृत्यु अरु जीवन कहाँ, कहँ लोक लौकिक कर्म कहँ।
निज निजी महिमा में सुदृढ़, कहँ लय मुझे सुसमाधि कहँ।।

---

8 अलं त्रिवर्गकथया योगस्य कथयाऽप्यलम्।
अलं विज्ञानकथया विश्रान्तस्य ममात्मनि।।

अनुवादः अपनी आत्मा में विश्रान्त हुये मुझको त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की कथा पर्याप्त है, योग की कथा भी पर्याप्त है, विज्ञान की कथा भी पर्याप्त है।

हिंदी छंद

त्रय वर्ग की सारी कथा, अरु योग की पर्याप्त है।
मुझ आत्म संस्थित के लिये, अब ज्ञान भी पर्याप्त है।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां एकोनविंशतिकं प्रकरणं समाप्तम्।)

20
बीसवाँ प्रकरण
जीवनमुक्ति निरूपण

1 क्व भूतानि क्व देहो वा क्वेन्द्रियाणि क्व वा मनः।
क्व शून्यं क्व च नैराश्यं मत्स्वरूपे निरंजने।।

अनुवादः मेरे निरंजनस्वरूप में कहाँ पंचभूत हैं? कहाँ देह है? कहाँ इन्द्रियाँ हैं? अथवा कहाँ मन है? कहाँ शून्य है? और कहाँ नैराश्य है?

हिंदी छंद

कहँ भूत भौतिक देह कहँ, मन इन्द्रियाँ भी है कहाँ।
मेरे निरंजनरूप में कहँ शून्य विगत आशा कहाँ।।

2 क्व शास्त्रं क्वात्मविज्ञानं क्व वा निर्विषयं मनः।
क्व तृप्ति क्व वितृष्णत्वं गतद्वन्द्वस्य मे सदा।।

अनुवादः सदा द्वन्द्वरहित मुझको कहाँ शास्त्र? कहाँ आत्मविज्ञान है? कहाँ विषयरहित मन है? कहाँ तृप्ति है?कहाँ तृष्णा का अभाव है?

हिंदी छंद

कहँ शास्त्र आत्मज्ञान कहँ या निर्विषयमन भी कहाँ।
निर्द्वंद्व नित मुझको कहाँ, तृप्ती अतृष्णा भी कहाँ।।

3 क्व विद्या क्व च वाऽविद्या क्वाहं क्वेदं मम क्व वा।
क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः स्वरूपस्य क्व रूपिता।।

अनुवादः स्व स्वरूप की कहाँ रूपिता है? कहाँ विद्या है और कहाँ अविद्या है? कहाँ 'मैं' है अथवा कहाँ 'यह' है? कहाँ 'मेरा' है? कहाँ बन्ध है? अथवा कहाँ मोक्ष है?

हिंदी छंद

विद्या अविद्या भी कहाँ, कहँ यह अहं मम भी कहाँ।
कहँ बन्ध है कहँ मोक्ष भी, स्वसुरूप में रूपक कहाँ।।

---

4 क्व प्रारब्धानि कर्माणि जीवनमुक्तिरपि क्व वा।
क्व तद्विदेहकैवल्यं निर्विशेषस्य सर्वदा।।

अनुवादः मुझ सदैव निर्विशेष को प्रारब्ध कर्म कहाँ? अथवा कहाँ जीवन्मुक्ति है? और कहाँ यह विदेहकैवल्य ही है?

हिंदी छंद

प्रारब्धमय कहँ कर्म जीवन, मुक्ति भी होगी कहाँ?
नित निर्विशेष स्वरूप को, वैदेहि मुक्ति रहती कहाँ।।

---

5 क्व कर्ता क्व च भोक्ता निष्क्रियं स्फुरणं क्व वा।
क्वापरोक्षं फलं वा क्व निःस्वभावस्य मे सदा।।

अनुवादः सदा स्वभावरहित मुझको कहाँ कर्त्तापन है और कहाँ भोक्तापन? अथवा कहाँ निष्क्रियता है और कहाँ स्फुरण है? कहाँ अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान है अथवा कहाँ फल है?

हिंदी छंद

कर्ता कहाँ भोक्ता कहाँ, निष्क्रियपना फुरना कहाँ।
मुझ निःस्वभाव स्वरूप को, अपरोक्ष या फल है कहाँ।।

6 क्व लोकः क्व मुमुक्षुर्वा क्व योगी ज्ञानवान् क्व वा।
क्व बद्धः क्व च वा मुक्तः स्वस्वरूपेऽहमद्वये।।

अनुवादः मुझ अद्वय स्वरूप को कहाँ लोक है? अथवा कहाँ मुमुक्षु है? कहाँ योगी है? कहाँ ज्ञानवान है? अथवा कहाँ बद्ध है? और कहाँ मुक्त है?

हिंदी छंद

कहँ लोक और मुमुक्षु कहँ, योगी तथा ज्ञानी कहाँ।
अद्वैत आत्म स्वरूप में, कहँ बद्ध मुक्त रहे कहाँ।।

---

7 क्व सृष्टिः क्व च संहारः क्व साध्यं क्व च साधनम्।
क्व साधकः क्व सिद्धिर्वास्वस्वरूपेऽहमद्वये।।

अनुवादः मुझ अद्वय स्वरूप को कहाँ सृष्टि और कहाँ संहार? कहाँ साध्य है? और कहाँ साधन है? कहाँ साधक है? अथवा कहाँ सिद्धि है?

हिंदी छंद

कहँ सृष्टि कहँ संसार है, यह साध्य साधन भी कहाँ।
अद्वैत आत्म स्वरूप में, साधक तथा सिद्धि कहाँ।।

---

8 क्व प्रमाता प्रमाणं वा क्व प्रमेयं क्व च प्रमा।
क्व किञ्चित्क्वं न किञ्चिद्वा सर्वदा विमलस्य मे।।

अनुवादः सर्वदा विमलरूप मुझको कहाँ प्रमाता? कहाँ प्रमाण? कहाँ प्रमेय है और कहाँ प्रमा है? कहाँ किंचित् है और कहाँ अकिंचित् है?

हिंदी छंद

है कहँ प्रमातृ प्रमाण भी, अथवा प्रमेय प्रमा कहाँ।
मुझ नित्य निर्मल को यहाँ किंचित् अकिंचित भी कहाँ।।

9 क्व विक्षेपः क्व चैकाग्रयं क्व निर्बोधः क्व मूढ़ता।
क्व हर्षः क्व विषादो वा सर्वदा निष्क्रियस्य मे।।

अनुवादः सर्वदा क्रियारहित मुझको कहाँ एकाग्रता कहाँ ज्ञान है? कहाँ मूढ़ता है? कहाँ हर्ष है? कहाँ विषाद है?

हिंदी छंद

विक्षेप कहँ एकाग्रता नितबोध भी कहँ मूढ़ता।
मुझ नित्य निष्क्रिय को कहाँ है हर्ष और विषादता।।

---

10 क्व चैव व्यवहारो वा क्व च सा परमार्थता।
क्व सुखं क्व च वा दुःखं निर्विमर्शस्य मे सदा।।

अनुवादः सदा निर्विकाररूप मुझको कहाँ यह व्यवहार है? और कहाँ वह परमार्थता है?कहाँ सुख है अथवा कहाँ दुःख है?

हिंदी छंद

व्यवहार भी यह है कहाँ, परमार्थ वह मुझको कहाँ।
नित निर्विमर्श स्वरूप को सुख दुःख भी होते कहाँ।।

---

11 क्व माया क्व च संसारः क्व प्रीतिर्विरतिः क्व वा।
क्व जीवः क्व च तद्ब्रह्म सर्वदा विमलस्य मे।।

अनुवादः मुझ सर्वदा विमलस्वरूप को कहाँ माया है और कहाँ संसार है? कहाँ प्रीति है अथवा कहाँ विरति है? कहाँ जीव है और कहाँ वह ब्रह्म है?

हिंदी छंद

माया कहाँ संसार कहँ, रति विरति भी क्या हो कहाँ।
यह ब्रह्म जीव विभेद भी, मुझ नित्य निर्मल को कहाँ।।

12 क्व प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा क्व मुक्तिः क्व च बन्धनम्।
कूटस्थनिर्विभागस्य स्वस्थ्यस्य मम सर्वदा।।

अनुवादः सर्वदा कूटस्थ (स्थिर), अखण्डरूप और स्वस्थ मुझको कहाँ निवृत्ति है? कहाँ मुक्ति है और कहाँ बन्ध है?

हिंदी छंद

मुझ निर्विभाग अखण्ड नित, कूटस्थ स्वस्थ स्वरूप में।
हैं कहँ प्रवृत्ति निवृत्ति बन्धन–मुक्ति चेतन रूप में।।

---

13 क्वोपदेशः क्व वा शास्त्रं क्व शिष्यः क्व च वा गुरुः।
क्व चास्ति पुरषार्थो वा निरुपाधेः शिवस्य मे।।

अनुवादः उपाधिरहित शिवरूप (कल्याणरूप) मुझको कहाँ उपदेश है? अथवा कहाँ शास्त्र है? कहाँ शिष्य है? कहाँ गुरु है? और कहाँ पुरुषार्थ है?

हिंदी छंद

उपदेश कहँ हैं शास्त्र कहँ, कहँ शिष्य अरु गुरु भी कहाँ
निरुपाधि हूँ शिवरूप हूँ, पुरुषार्थ भी मुझको कहाँ।।

---

14 क्व चास्ति क्व च वा नास्ति चैकं क्व च द्वयम्।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन किञ्चिन्नोतिष्ठते मम।।

अनुवादः कहाँ अस्ति है और कहाँ नास्ति? अथवा कहाँ एक है और कहाँ दो है? इसमें बहुत कहने से क्या प्रयोजन, मुझको तो कुछ भी नहीं उठा रहा है (सब शान्त हो गया है)।

हिंदी छंद

अस्तित्व कहँ नास्तित्व कहँ, अद्वैत द्वैत रहे कहाँ।
क्या बहुत कहने से मुझे, किंचित् न भेद उठे यहाँ।।

(इति श्री अष्टावक्रगीतायां विंशतिकं प्रकरणं समाप्तम्।)

Shrimad Rajchandra Mission, Delhi

a Spiritual Revolutionary Movement - SRM

www.shrimadrajchandradelhi.org